अध्याय 4

मानव विकास

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- विकास के अर्थ और प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे,
- मानव विकास पर आनुवंशिकता, पर्यावरण एवं संदर्भ के प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे,
- मानव विकास की अवस्थाओं की पहचान कर सकेंगे तथा शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे, तथा
- अपने विकास-क्रम तथा उससे संबंधित अनुभवों पर मनन कर सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय
विकास का अर्थ
विकास का जीवनपर्यंत परिप्रेक्ष्य
संवृद्धि, विकास, परिपक्वता तथा क्रमविकास (बॉक्स 4.1)
विकास को प्रभावित करने वाले कारक
विकास का संदर्भ
विकासात्मक अवस्थाओं की समग्र दृष्टि
प्रसवपूर्व अवस्था
शैशवावस्था
बाल्यावस्था
लिंग एवं स्त्री-पुरुष भूमिकाएँ (बॉक्स 4.2)
किशोरावस्था की चुनौतियाँ
प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था

प्रमुख पद
सारांश
समीक्षात्मक प्रश्न
परियोजना विचार

परिचय

यदि आप अपने चारों ओर देखें तो आप यह पाएँगे कि एक व्यक्ति के जीवन में जन्म के बाद से ही विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं, जो वृद्धावस्था तक भी जारी रहते हैं। एक निश्चित समय अवधि में, मनुष्य बढ़ता और विकसित होता है, संप्रेषण अथवा बात-चीत करना, चलना, गिनती गिनना, पढ़ना तथा लिखना सीखता है। सही तथा गलत के मध्य भेद करना भी वह सीखता है। वह मित्र बनाता है, यौवनारंभ की अवस्था से गुजरता है, विवाह कर लेता है, बच्चों का पालन-पोषण करता है, और वृद्ध हो जाता है। यद्यपि हम एक-दूसरे से भिन्न हैं, तथापि हम लोगों में एक जैसी अनेक विशेषताएँ पाई जाती हैं। हम लोगों में से अधिकांशतः व्यक्ति एक वर्ष की अवस्था तक चलना तथा दो वर्ष की अवस्था तक बोलना सीख लेते हैं। यह अध्याय लोगों के संपूर्ण जीवन क्रम में विभिन्न क्षेत्रों में दिखने वाले परिवर्तनों से आपका परिचय कराएगा। आप प्रमुख विकासात्मक प्रक्रियाओं तथा संपूर्ण जीवन की प्रमुख अवस्थाओं: प्रसवपूर्व अवस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था, तथा वृद्धावस्था, में होने वाले परिवर्तनों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। यह स्वयं को समझने तथा आत्म-अन्वेषण की एक यात्रा होगी जिसे आपके भावी विकास में सहायक होना चाहिए। दूसरों से भली प्रकार से व्यवहार करने में भी मानव विकास का अध्ययन आपके लिए सहायक होगा।

विकास का अर्थ

जब हम विकास के बारे में सोचते हैं तो निरपवाद रूप से हम दैहिक परिवर्तनों के बारे में सोचते हैं, क्योंकि घर में भाई-बहनों में, विद्यालय में मित्रों-सहयोगियों में अथवा घर में माता-पिता एवं दादा-दादी या अपने आस-पास के अन्य लोगों में ये परिवर्तन सामान्यतया देखे जाते हैं। गर्भाधान से लेकर मृत्यु के क्षणों तक हम मात्र दैहिक रूप से ही नहीं परिवर्तित होते हैं बल्कि हम सोचने, भाषा के उपयोग, तथा सामाजिक संबंधों को विकसित करने के तरीकों के आधार पर भी परिवर्तित होते रहते हैं। याद रखें कि परिवर्तन एक व्यक्ति के जीवन के किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहते हैं; ये व्यक्ति में एकीकृत रूप से या एक साथ उत्पन्न होते हैं। *विकास गतिशील, क्रमबद्ध, तथा पूर्वकथनीय परिवर्तनों का प्रारूप है जो गर्भाधान से प्रारंभ होता है तथा जीवनपर्यंत चलता रहता है।* विकास में मुख्यतया संवृद्धि एवं ह्रास, जो वृद्धावस्था में देखा जाता है, दोनों ही तरह के परिवर्तन निहित होते हैं।

विकास जैविक, संज्ञानात्मक, तथा समाज-सांवेगिक प्रक्रियाओं की परस्पर क्रिया से प्रभावित होता है। माता-पिता से वंशानुगत रूप से प्राप्त जीन के कारण होने वाले विकास; जैसे- लंबाई एवं वज़न, मस्तिष्क, हृदय, एवं फेफड़े का विकास इत्यादि, ये सभी **जैविक प्रक्रियाओं** (biological processes) की भूमिका को इंगित करते हैं। विकास में **संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं** (cognitive processes) की भूमिका का संबंध ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त करने तथा इनसे संबंधित मानसिक क्रियाओं; जैसे- चिंतन, प्रत्यक्षण, अवधान, समस्या समाधान आदि से है। विकास को प्रभावित करने वाली **समाज-संवेगात्मक प्रक्रियाओं** (socio-emotional processes) का संबंध एक व्यक्ति की दूसरों के साथ अंतःक्रिया में होने वाले और संवेग तथा व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तनों से है। एक बच्चे का अपनी माँ से लिपट जाना, एक छोटी बच्ची का अपने भाई-बहनों के प्रति स्नेहमय भाव का प्रदर्शन, अथवा एक किशोर का मैच हारने का दुःख, सभी मानव विकास में समाज-संवेगात्मक प्रक्रियाओं की गहन लिप्तता को प्रकट करते हैं।

यद्यपि आप इस पाठ्यपुस्तक के अलग-अलग अध्यायों में अलग-अलग प्रक्रियाओं के बारे में पढ़ेंगे, यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि जैविक, संज्ञानात्मक, तथा समाज-संवेगात्मक प्रक्रियाएँ एक दूसरे से घनिष्ट रूप से संबंधित हैं। मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक की संपूर्ण अवधि में ये प्रक्रियाएँ व्यक्ति के विकास में होने वाले परिवर्तनों को समग्र रूप से प्रभावित करती हैं।

विकास का जीवनपर्यंत परिप्रेक्ष्य

जीवनपर्यंत परिप्रेक्ष्य के अनुसार विकास के अध्ययन में निम्नलिखित मान्यताएँ या पूर्वधारणाएँ निहित हैं:

1. विकास जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है, अर्थात विकास गर्भाधान से प्रारंभ होकर वृद्धावस्था तक सभी आयु समूहों

में होता है। इसमें प्राप्तियाँ तथा हानियाँ दोनों ही सम्मिलित हैं, जो संपूर्ण जीवन-विस्तार में गत्यात्मक तरीके से (एक पक्ष में परिवर्तन के साथ दूसरे पक्ष में भी परिवर्तन का होना) अंत:क्रिया करती हैं।

2. जन्म से मृत्यु तक की संपूर्ण अवधि में मानव विकास की विभिन्न प्रक्रियाएँ, अर्थात जैविक, संज्ञानात्मक, तथा समाज-संवेगात्मक, एक व्यक्ति के विकास में एक दूसरे से घनिष्ट रूप से संबंधित रहते हैं।
3. विकास बहु-दिश् है। विकास के एक दिए हुए आयाम के कुछ आयामों या घटकों में वृद्धि हो सकती है, जबकि दूसरे ह्रास का प्रदर्शन कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्रौढ़ों के अनुभव उन्हें अधिक बुद्धिमान बना सकते हैं तथा उनके निर्णयों को दिशा प्रदान कर सकते हैं। जबकि उम्र बढ़ने के साथ, गति की माँग करने वाले कार्यों, जैसे दौड़ना, पर एक व्यक्ति का निष्पादन कम हो सकता है।
4. विकास अत्यधिक लचीला या संशोधन योग्य होता है, अर्थात व्यक्ति के अंतर्गत होने वाले मानसिक विकास में परिमार्जनशीलता पाई जाती है, यद्यपि इस लचीलेपन में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्नता पाई जाती है। इसका अर्थ यह है कि संपूर्ण जीवन-क्रम में कौशलों तथा योग्यताओं में सुधार या विकास किया जा सकता है।
5. विकास ऐतिहासिक दशाओं से प्रभावित होता है। उदाहरणार्थ, भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान रहे 20 वर्षीय व्यक्ति का अनुभव आज के 20 वर्षीय व्यक्ति से बहुत भिन्न होगा। आज के विद्यालय स्तर के विद्यार्थियों का कैरियर या जीविका के प्रति रुझान उन विद्यार्थियों से बहुत भिन्न है जो आज से 50 वर्ष पहले विद्यालय स्तर के थे।
6. विकास अनेक शैक्षणिक विद्याओं के लिए एक महत्वपूर्ण सरोकार है। विभिन्न विषयों; जैसे- मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, तथा तंत्रिका विज्ञान में मानव विकास का

बॉक्स 4.1 संवृद्धि, विकास, परिपक्वता तथा क्रमविकास

संवृद्धि *(growth) शारीरिक अंगों अथवा संपूर्ण जीव की बढ़ोत्तरी को कहते हैं। इसका मापन अथवा मात्राकरण किया जा सकता है, उदाहरण के लिए, ऊँचाई, वज़न आदि में वृद्धि।* ***विकास*** *(development) एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने संपूर्ण जीवन-चक्र में बढ़ता रहता है एवं परिवर्तित होता रहता है। विकास शब्द उन परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जिनके होने की एक दिशा होती है तथा जिनका इनके पूर्ववर्ती कारकों से एक निश्चित संबंध होता है जो बाद में यह निर्धारित करेंगे कि इसके बाद (इन परिवर्तनों के बाद) क्या आएगा या घटित होगा (किस तरह के परिवर्तन होंगे)। अल्पकालिक बीमारी के कारण होने वाले अस्थाई परिवर्तन, उदाहरणार्थ, विकास के अंतर्गत नहीं आते हैं। विकास के फलस्वरूप होने वाले सभी परिवर्तन एक जैसे नहीं होते। अत: आकार में परिवर्तन (शारीरिक संवृद्धि), अनुपात में परिवर्तन (बच्चे से प्रौढ़), अभिलक्षणों अथवा आकृति में परिवर्तन (दूध के दाँतों का निकल जाना), तथा नयी आकृतियों या अभिलक्षणों को पाना, ये सभी परिवर्तन अपनी गति तथा व्यापकता के स्तर में भिन्न होते हैं। संवृद्धि, विकास का एक पक्ष है।* ***परिपक्वता*** *(maturation) उन परिवर्तनों को इंगित करता है जो एक निर्धारित क्रम का अनुसरण करते हैं तथा प्रधानत: उस आनुवंशिक रूपरेखा (ब्लूप्रिंट) से सुनिश्चित होते हैं जो हमारी संवृद्धि एवं विकास में समानता उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए, अधिकांश बच्चे 7 माह की आयु तक बिना सहारे के बैठ सकते हैं, आठवें महीने तक सहारे के साथ खड़े हो सकते हैं, तथा एक वर्ष की उम्र तक चलने लगते हैं। एक बार जब बच्चे की आधारभूत शारीरिक संरचना पर्याप्त रूप से विकसित हो जाती है तो इन व्यवहारों में कुशलता प्राप्त करने के लिए उपयुक्त परिवेश एवं थोड़े से अभ्यास की आवश्यकता होती है। परंतु, यदि बच्चे परिपक्वता की दृष्टि से तैयार नहीं हैं तो इन व्यवहारों को त्वरित करने के लिए किए गए विशेष प्रयास का कोई लाभ नहीं मिलता है। ये प्रक्रियाएँ 'अंदर से प्रस्फुटित होती हैं'। ये आंतरिक एवं आनुवंशिक रूप से निर्धारित समय-सारणी, जो प्रजाति विशेष की चरित्रगत विशेषता होती है, के अनुसार घटित होती हैं।* ***क्रमविकास*** *(evolution) प्रजाति-विशिष्ट परिवर्तनों को कहते हैं। प्राकृतिक चयन एक विकासवादी प्रक्रिया है जो उन व्यक्तियों या प्रजातियों को लाभ पहुँचाती है जो अपनी जीवन-रक्षा तथा वंश परंपरा को आगे बढ़ाने अर्थात प्रजनन करने के लिए सर्वश्रेष्ठ रूप से अनुकूलित होती हैं। विकासवादी परिवर्तन किसी प्रजाति की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते हैं। क्रमविकास अत्यंत धीमी गति से आगे बढ़ता है। आदि वानर प्रजाति से मनुष्य प्रजाति की उत्पत्ति में लगभग चौदह मिलियन (एक करोड़ चालीस लाख) वर्ष लगे। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि 'प्राज्ञ मानव' लगभग 50,000 वर्ष पहले अस्तित्व में आया।*

अध्ययन किया जाता है, प्रत्येक विषय संपूर्ण जीवन क्रम में होने वाले विकास को समझने का प्रयास कर रहा है।

7. एक व्यक्ति परिस्थिति अथवा संदर्भ के आधार पर अनुक्रिया करता है। इस संदर्भ के अंतर्गत वंशानुगत रूप से प्राप्त विशेषताएँ, भौतिक पर्यावरण, सामाजिक, ऐतिहासिक, तथा सांस्कृतिक संदर्भ आदि सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिए, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में घटित घटनाएँ एक जैसी नहीं होती हैं; जैसे- माता-पिता की मृत्यु, दुर्घटना, भूकंप आदि एक व्यक्ति के जीवन क्रम को जिस प्रकार प्रभावित करती हैं वैसे ही पुरस्कार जीतना, या एक अच्छी नौकरी पा लेना जैसी सकारात्मक घटनाएँ भी विकास को प्रभावित करती हैं। संदर्भों के बदलने के साथ-साथ लोग बदलते रहते हैं।

विकास को प्रभावित करने वाले कारक

क्या आपने अपनी कक्षा में देखा है कि आप में से कुछ लोगों की त्वचा का रंग साँवला है तथा कुछ लोगों की त्वचा का रंग साफ या गोरा है, आपके बाल और आँखों के रंग भिन्न हैं, आप में से कुछ लंबे हैं तो कुछ छोटे, कुछ शांत या उदास हैं जबकि दूसरे बातूनी या प्रसन्नचित्त। शारीरिक लक्षणों के अतिरिक्त बुद्धि, अधिगम योग्यताओं, स्मृति तथा अन्य मानसिक लक्षणों के आधार पर भी लोगों में भिन्नता पाई जाती है। इन भिन्नताओं के बावजूद, किसी भी व्यक्ति को किसी दूसरी प्रजाति के प्राणी के रूप में पहचानने की गलती नहीं की जा सकती है। हम सभी प्राज्ञ मानव हैं। वह क्या कारण है जो हमें एक दूसरे से भिन्न बनाता है परंतु साथ ही साथ एक दूसरे से बहुत हद तक समान भी? इसका उत्तर आनुवंशिकता एवं परिवेश की अंत:क्रिया में छिपा है।

आप अध्याय 3 में पहले ही पढ़ चुके हैं कि आनुवंशिकता का सिद्धांत प्रत्येक प्रजाति की विशेषताओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने या हस्तांतरण करने की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। हम आनुवंशिक कूट-संकेत, जो हमारे शरीर के प्रत्येक कोश में विद्यमान रहते हैं, अपने माता-पिता से वंशानुगत रूप से पाते हैं। हमारे आनुवंशिक कूट-संकेत एक तरह से एक जैसे हैं; उनमें मनुष्य के आनुवंशिक कूट-संकेत होते हैं। यह मनुष्य के आनुवंशिक कूट-संकेत के कारण ही है कि मनुष्य का एक निषेचित अंडा मानव शिशु के रूप में विकसित होता है और वह एक हाथी, एक पक्षी, अथवा एक चूहे के रूप में विकसित नहीं हो सकता है।

आनुवंशिक हस्तांतरण अत्यधिक जटिल प्रक्रिया है। अधिकांश विशेषताएँ जिन्हें हम मनुष्यों में देखते हैं वे बहुत बड़ी संख्या में जीनों के जुड़ने के क्रम के कारण हैं। आप 80,000 या उससे भी अधिक जीनों के जुड़ने के अलग-अलग तरह के क्रमों की कल्पना कर सकते हैं जो विविध प्रकार की विशेषताओं तथा व्यवहारों को निर्धारित करते हैं। हमारी आनुवंशिक संरचना द्वारा उपलब्ध कराई गई सभी विशेषताओं को प्राप्त कर लेना भी संभव नहीं है। वास्तविक आनुवंशिक तत्व या व्यक्ति की आनुवंशिक विरासत या वंश परंपरा को **जीन प्ररूप** (genotype) कहते हैं। परंतु, हमारी प्रेक्षणीय विशेषताओं में यह आनुवंशिक तत्व पूरी तरह से प्रदर्शित या स्पष्ट रूप से पहचानने योग्य नहीं होता है। प्रेक्षणीय एवं मापन योग्य विशेषताओं के रूप में जिस प्रकार व्यक्ति का जीन प्ररूप अभिव्यक्त होता है उसे **दृश्य प्ररूप** (phenotype) कहते हैं। शारीरिक लक्षण; जैसे- ऊँचाई, वज़न, आँख तथा त्वचा का रंग, एवं अनेक मानसिक विशेषताएँ; जैसे- बुद्धि, सर्जनात्मकता, और व्यक्तित्व दृश्य प्ररूप के अंतर्गत आते हैं। व्यक्ति में ये देखी जा सकने वाली विशेषताएँ, व्यक्ति के वंशागत शीलगुण तथा उनके परिवेश की अंत:क्रिया के परिणाम हैं। आप जानते हैं कि ये वह आनुवंशिक कूट-संकेत हैं जो एक बच्चे को एक विशेष तरीके से विकसित होने के लिए पूर्व-प्रवृत्त करते हैं। व्यक्ति के विकास के लिए जीन एक विशिष्ट रूपरेखा (ब्लूप्रिंट) तथा समय-सारणी प्रदान करते हैं। परंतु जीन का अलग से या पृथक अस्तित्व नहीं होता है और विकास व्यक्ति के परिवेश के संदर्भ में ही होता है। यही वह कारण है जो हम में से हर एक को अपने तरह का एक अलग व्यक्ति बनाता है।

परिवेशीय प्रभाव क्या हैं? परिवेश विकास को किस प्रकार से प्रभावित करता है? एक अंतर्मुखता की ओर प्रवृत्त करने वाले जीनप्ररूप से युक्त बच्चे की कल्पना कीजिए जो ऐसे परिवेश में है जो सामाजिक अंत:क्रिया तथा बहिर्मुखता को बढ़ावा देता है। ऐसे परिवेश का प्रभाव बच्चे को थोड़ा बहिर्मुखी बना सकता है। आइए एक दूसरा उदाहरण लें। एक 'छोटे' कद के जीन से युक्त व्यक्ति, यदि वह अच्छे पोषण वाले परिवेश में है तब भी, सामान्य से अधिक लंबा होने में कभी भी सक्षम नहीं होगा। इससे यह प्रदर्शित होता है कि जीन सीमाओं को निर्धारित कर देते हैं और इस सीमा के अंतर्गत परिवेश विकास को प्रभावित करता है।

अब तक आप यह जान चुके हैं कि बच्चे के विकास के लिए माता-पिता जीन प्रदान करते हैं। क्या आप जानते हैं कि यह निर्धारित करने में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है कि उनके बच्चे किस तरह के परिवेश को पाएँगे? सैन्ड्रा स्कार (Sandra Scarr, 1992) का मानना है कि अपने बच्चे को माता-पिता जो परिवेश प्रदान करते हैं वह कुछ हद तक उनकी स्वयं की आनुवंशिक पूर्व-प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, यदि माता-पिता बुद्धिमान हैं तथा अच्छे पाठक हैं तो वे अपने बच्चों को पढ़ने के लिए पुस्तकें देंगे जिसका संभावित परिणाम यह होगा कि उनके बच्चे अच्छे पाठक बन जाएँगे और वे पढ़ने में आनंद का अनुभव करेंगे। सहयोगी एवं ध्यान देने की प्रवृत्ति जैसे अपने जीन प्ररूप (जो उसे वंशागत रूप से प्राप्त है) के परिणामस्वरूप एक बच्चा, उन बच्चों की तुलना में जो सहयोगी एवं ध्यान देने वाले नहीं हैं, अध्यापकों तथा माता-पिता से अधिक सुखद अनुक्रियाएँ प्राप्त करेगा। इसके अतिरिक्त बच्चे अपने जीन प्ररूप के आधार पर स्वयं कुछ परिवेश का चयन करते हैं। उदाहरण के लिए, अपने जीन प्ररूप के कारण वे संगीत या खेल-कूद में अच्छा निष्पादन कर सकते हैं और वे वैसे परिवेश को ढूँढ़ेंगे तथा उसमें अधिक समय व्यतीत करेंगे जो उन्हें संगीतपरक कौशलों के निष्पादन या अभ्यास का अवसर प्रदान करेगा; इसी प्रकार एक खिलाड़ी खेल-कूद से संबंधित परिवेश की खोज करेगा। परिवेश से ऐसी अंत:क्रियाएँ शैशवावस्था से लेकर किशोरावस्था तक परिवर्तित होती रहती हैं। परिवेशीय प्रभाव भी उतने ही जटिल हैं जितने कि वंशपरंपरा से प्राप्त जीन।

यदि आपकी कक्षा का मॉनीटर पढ़ने-लिखने में तेज़ होने तथा लोकप्रिय विद्यार्थी होने के आधार पर चुना जाता है तो क्या आप यह मानते हैं कि यह उसके जीन अथवा परिवेश के प्रभाव के कारण है? एक ग्रामीण क्षेत्र का बच्चा जो अत्यधिक बुद्धिमान है, यदि अपने को ठीक तरह से अभिव्यक्त न कर पाने अथवा कंप्यूटर उपयोग की जानकारी न होने के कारण एक नौकरी पाने में सक्षम नहीं हो पाता है, तो क्या आप मानते हैं कि यह जीन अथवा परिवेश के कारण है?

विकास का संदर्भ

विकास निर्वात में नहीं घटित होता है। यह सदैव एक विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में सन्निहित होता है। जैसा कि आप इस अध्याय में पढ़ेंगे, एक व्यक्ति के संपूर्ण जीवन काल में परिवर्तन; जैसे- विद्यालय में प्रवेश करना, एक किशोर बनना, नौकरी खोजना, विवाह करना, बच्चों का होना, सेवानिवृत्त होना इत्यादि, सभी जैविक परिवर्तनों तथा व्यक्ति के परिवेश में परिवर्तनों का संयुक्त कार्य है। व्यक्ति के संपूर्ण जीवन क्रम में किसी भी समय परिवेश परिवर्तित हो सकता है।

युरी ब्रानफेनब्रेनर (Urie Bronfenbrenner) का विकास का परिस्थितिपरक दृष्टिकोण व्यक्ति के विकास में परिवेशीय कारकों की भूमिका पर अधिक बल देता है। इसका निरूपण चित्र 4.1 में किया गया है।

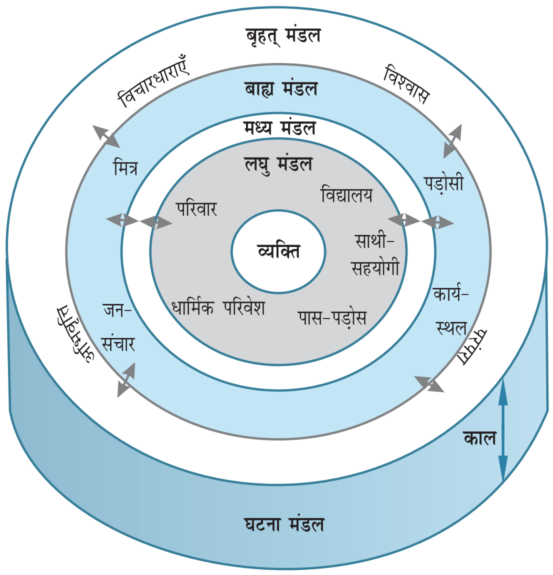

चित्र 4.1 : ब्रानफेनब्रेनर का विकास का परिस्थितिपरक दृष्टिकोण

लघु मंडल (microsystem) वह निकटतम परिवेश है जिसमें व्यक्ति रहता है। यही वह परिवेश है जिसमें बच्चा सामाजिक कारकों या एजेन्टों; जैसे- परिवार, साथी-सहयोगी, अध्यापक, एवं पड़ोस से प्रत्यक्ष रूप से अंत:क्रिया करता है। इन परिवेशों के मध्य संबंध **मध्य मंडल** (mesosystem) के अंतर्गत आते हैं। उदाहरण के लिए, एक बच्चे के माता-पिता अध्यापकों से कैसे संबंध स्थापित करते हैं, या माता-पिता किशोर के मित्र को किस रूप में देखते हैं, ये ऐसे अनुभव हैं जो एक व्यक्ति के दूसरों से संबंध को प्रभावित करने वाले हैं।

बाह्य मंडल (exosystem) के अंतर्गत सामाजिक परिवेश की वे घटनाएँ आती हैं जहाँ बच्चा प्रत्यक्ष रूप से प्रतिभागिता नहीं करता है, परंतु वे तात्कालिक परिस्थिति में बच्चे के अनुभव को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, माता या पिता का स्थानांतरण माता-पिता में तनाव उत्पन्न कर सकता है जो बच्चे के साथ उनकी अंत:क्रिया अथवा बच्चे को उपलब्ध सामान्य सुख-सुविधाएँ; जैसे- विद्यालयी पठन-पाठन, पुस्तकालयी सुविधाएँ, चिकित्सीय देख-रेख, मनोरंजन के साधन आदि की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है। **बृहत् मंडल** (macrosystem) के अंतर्गत वह संस्कृति आती है जिसमें व्यक्ति रहता है। व्यक्ति के विकास में संस्कृति के महत्त्व को आप अध्याय 3 में पढ़ चुके हैं। **घटना मंडल** (chronosystem) में व्यक्ति के जीवन-क्रम की घटनाएँ तथा उस काल की सामाजिक-ऐतिहासिक परिस्थितियाँ; जैसे- माता-पिता का तलाक या आर्थिक आघात, एवं बच्चों पर उनका प्रभाव आदि निहित हैं।

संक्षेप में, ब्रानफेनब्रेनर का दृष्टिकोण यह है कि बच्चे का विकास उस जटिल संसार से सार्थक रूप से प्रभावित होता है जो उसे आच्छादित किए हुए है - चाहे वह उसके साथियों के साथ बातचीत का गौण प्रसंग हो, अथवा जीवन की वे सामाजिक या आर्थिक परिस्थितियाँ जिसमें उसने जन्म लिया है। शोध यह प्रदर्शित करते हैं कि साधनरहित परिवेश में बच्चों को पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, खिलौनों आदि से रहित उत्तेजनाहीन परिवेश मिलता है, उसमें ऐसे अनुभवों का अभाव होता है; जैसे- पुस्तकालय, संग्रहालय, चिड़ियाघर आदि में जाना, इसमें ऐसे माता-पिता होते हैं जो भूमिका प्रतिरूप स्थापित करने में प्रभावहीन होते हैं। माता-पिता से अंत:क्रिया उपयुक्त तरीके से नहीं होती है तथा बच्चे अत्यधिक भीड़ एवं शोरगुल वाले परिवेश में रहते हैं। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप बच्चे असुविधाजनक स्थिति में होते हैं एवं उन्हें सीखने में कठिनाइयाँ होती हैं।

दुर्गानन्द सिन्हा (Durganand Sinha, 1977) ने भारतीय संदर्भ में बच्चों के विकास को समझने के लिए एक पारिस्थितिक मॉडल प्रस्तुत किया है। बच्चे की पारिस्थितिक को दो संकेंद्रीय परतों के रूप में देखा जा सकता है। 'ऊपरी एवं अधिक दृश्य परतों' के अंतर्गत घर, विद्यालय, समसमूह आदि आते हैं। दृश्य ऊपरी परत में बच्चे के विकास को प्रभावित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण पारिस्थितिक कारक के अंतर्गत अग्रांकित तत्व आते हैं: (1) घर, उसमें क्षमता से अधिक लोगों का रहना, प्रत्येक सदस्य के लिए उपलब्ध स्थान, प्रयोग में लाए जाने वाले खिलौने, तकनीकी उपकरण आदि के आधार पर घर की परिस्थिति; (2) विद्यालयी पठन-पाठन का स्वरूप तथा गुणवत्ता, वे सुविधाएँ जो बच्चे को प्रस्तुत की जाती हैं; और (3) बाल्यावस्था तथा उसके बाद की अवस्था, समसमूह के साथ की जाने वाली अंत:क्रिया एवं गतिविधियों का स्वरूप।

ये कारक स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करते हैं बल्कि एक दूसरे से निरंतर अंत:क्रिया करते रहते हैं। चूँकि ये कारक एक विस्तृत एवं अधिक व्यापक परिवेश में सन्निहित रहते हैं, इसलिए बच्चे के पारिस्थितिकी के 'आसपास की परतें', 'उपरी परत' कारकों को निरंतर प्रभावित करती रहती हैं। परंतु, इनके प्रभाव सदैव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत नहीं होते हैं। पारिस्थितिकी के आसपास की परत के अंतर्गत अग्रांकित तत्व आते हैं: (1) सामान्य भौगोलिक परिवेश। इसके अंतर्गत मुहल्ले की सामान्य भीड़-भाड़ एवं जनसंख्या घनत्व सहित घर से बाहर खेलने तथा अन्य गतिविधियों के लिए स्थान एवं सुविधाएँ आदि आते हैं; (2) जाति, वर्ग एवं अन्य कारकों द्वारा मुहैया कराया गया संस्थागत परिवेश; तथा (3) बच्चे के लिए उपलब्ध सामान्य सुख-सुविधाएँ; जैसे- पीने का पानी, बिजली, मनोरंजन के साधन इत्यादि।

दृश्य एवं आसपास की परत से संबद्ध कारक एक दूसरे से अंत:क्रिया करते हैं और विकास में इनकी भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न परिणतियाँ हो सकती हैं। व्यक्ति के संपूर्ण जीवन-क्रम में कभी भी पारिस्थितिक पर्यावरण परिवर्तित हो सकता या बदल सकता है। इसलिए, एक व्यक्ति की कार्यप्रणाली में अंतर को समझने के लिए व्यक्ति को उसके अनुभवों के संदर्भ में देखना महत्वपूर्ण है।

क्रियाकलाप 4.1

यदि आप सभी सुख-सुविधाओं, शहर में रहने के कारण आप जिनके आदी हैं, से वंचित एक ग्रामीण क्षेत्र या एक छोटे शहर में रहते हैं तो आपका जीवन कैसा होगा? आप इसके विपरीत परिस्थिति के बारे में भी सोच सकते हैं। अर्थात यदि आप सभी सुख-सुविधाओं, जिनके आप गाँव में रहने के कारण आदी हैं, से वंचित एक शहरी क्षेत्र में रहते हैं तो आप का जीवन कैसा होगा? गरीबी, निरक्षरता, प्रदूषण, जनसंख्या आदि का ध्यान रखते हुए आप छोटे समूह में इसकी परिचर्चा करें।

विकासात्मक अवस्थाओं की समग्र दृष्टि

विकास का वर्णन सामान्यतया अवधि या अवस्थाओं के रूप में किया जाता है। आपने यह देखा होगा कि आपके छोटे भाई-बहन या माता-पिता और स्वयं आप भी अलग-अलग तरह से व्यवहार करते हैं। यदि आप अपने पास-पड़ोस में रहने वाले लोगों को देखें, तो आप पाएँगे कि वे भी एक जैसा व्यवहार नहीं करते हैं। यह अंतर आंशिक रूप से इस कारण है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में होता है। मानव जीवन विभिन्न **अवस्थाओं** (stages) से होते हुए आगे बढ़ता है। उदाहरण के लिए, आप वर्तमान में किशोरावस्था में हैं एवं कुछ वर्ष बाद आप प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करेंगे। विकासात्मक अवस्थाएँ अस्थाई मानी जाती हैं एवं प्रायः एक प्रभावी लक्षण या प्रमुख विशेषता के द्वारा पहचानी जाती हैं, जो प्रत्येक अवधि को उसकी अद्वितीय विशिष्टता प्रदान करती हैं। एक विशिष्ट अवस्था में व्यक्ति एक निर्धारित लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है – एक स्थिति या योग्यता जिसे विकास के अनुक्रम में अगली अवस्था तक बढ़ने से पहले ठीक उसी क्रम में प्राप्त कर लेना चाहिए जिस प्रकार से अन्य व्यक्तियों ने प्राप्त किया है। निःसंदेह, विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था के मध्य विकास के समय तथा दर के सापेक्ष व्यक्ति निश्चित रूप से भिन्न होते हैं। यह देखा जा सकता है कि कुछ व्यवहार प्रारूप तथा कुछ कौशल एक विशिष्ट अवस्था में अधिक आसानी से एवं सफलतापूर्वक सीखे जाते हैं। व्यक्ति की ये उपलब्धियाँ विकास की उस अवस्था के लिए एक सामाजिक अपेक्षा बन जाती हैं। इन्हें **विकासात्मक कार्य** (developmental tasks) कहते हैं। अब आप विकास की विभिन्न अवस्थाओं तथा उसकी प्रमुख विशेषताओं के बारे में पढ़ेंगे।

प्रसवपूर्व अवस्था

गर्भाधान से लेकर जन्म तक की अवधि को प्रसवपूर्व काल कहते हैं। औसतन यह लगभग 40 सप्ताह तक का होता है। अब तक आप जान चुके हैं कि प्रसवपूर्व काल में तथा जन्म के बाद हमारे विकास को हमारी आनुवंशिक रूपरेखा (ब्लूप्रिंट) निर्देशित करती है। प्रसवपूर्व अवस्था की विभिन्न अवधियों में आनुवंशिक तथा परिवेशीय दोनों ही तरह के कारक हमारे विकास को प्रभावित करते हैं।

प्रसवपूर्व अवस्था में विकास माता की विशेषताओं से भी प्रभावित होता है; जैसे- माँ की आयु, उसके द्वारा लिए जाने वाले पोषक आहार तथा सांवेगिक स्थिति। माँ का रोग या संक्रमण ग्रस्त होना प्रसवपूर्व अवस्था के विकास पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है। उदाहरण के लिए, यह माना जाता है कि रूबेला नामक रोग (जिसे जर्मन मिज़ल्स कहते हैं), जननांग में होने वाला हर्पिस तथा ह्यूमन इम्यूनोडिफिशियंसि वाइरस (एच.आई.वी.) नवजात शिशुओं में आनुवंशिक समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। प्रसवपूर्व अवस्था में विकास के लिए भय का दूसरा स्रोत **विरूपजनन-तत्व** (teratogens) है – वे परिवेशीय कारक जो सामान्य विकास में ऐसे विचलन उत्पन्न करते हैं जिससे गंभीर असामान्यताएँ जन्म ले सकती हैं या मृत्यु हो सकती है। सामान्य विरूपजनन-तत्व के अंतर्गत मादक द्रव्य, संक्रमण, विकिरण तथा प्रदूषण आते हैं। स्त्री द्वारा प्रसवपूर्व काल में मादक द्रव्य (गांजा, हेरोइन, कोकीन आदि), शराब, तंबाकू आदि के सेवन का शिशु पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है और जन्मजात असामान्यताओं की आवृत्ति बढ़ सकती है। विकिरण (जैसे- एक्स-रे) तथा औद्योगिक क्षेत्र के आस-पास के कुछ रसायन, जीन में स्थाई परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं। परिवेशीय प्रदूषक तथा कार्बनमोनोऑक्साइड, पारा, शीशा जैसे विषाक्त पदार्थ भी अजन्मे बच्चे के लिए खतरे के स्रोत हैं।

शैशवावस्था

जन्म के पहले एवं उसके बाद मस्तिष्क आश्यर्चजनक गति से विकसित होता है। मस्तिष्क के विभिन्न भागों तथा मानवीय क्रियाओं; जैसे- भाषा, प्रत्यक्षण, एवं बुद्धि, के संचालन में प्रमस्तिष्क की महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में आप अध्याय 3 में पहले ही पढ़ चुके हैं। जन्म के ठीक पहले नवजात शिशुओं में सभी तो नहीं परंतु अधिकांश मस्तिष्कीय कोशिकाएँ रहती हैं। इन कोशिकाओं के मध्य तंत्रिकीय संधि तीव्र गति से विकसित होती है।

नवजात शिशु उतना असहाय नहीं होता है जितना कि आप सोचते हैं। जीवन की कार्यप्रणाली को बनाए रखने के लिए आवश्यक क्रियाएँ नवजात शिशु में उपस्थित रहती हैं – वह साँस लेता है, चूसता है, निगलता है एवं शरीर के अपशिष्ट पदार्थों (मल, मूत्र आदि) का त्याग या विसर्जन भी करता है। अपने जीवन के प्रथम सप्ताह में नवजात शिशु यह बताने में सक्षम होते हैं कि ध्वनि किस दिशा से आ रही है, अन्य स्त्रियों की आवाज़ तथा अपनी माँ की आवाज़ में अंतर कर सकते हैं, एवं सामान्य हावभाव का अनुकरण कर सकते हैं; जैसे- जीभ बाहर निकालना, मुँह खोलना आदि।

पेशीय विकास : नवजात शिशुओं की पेशीय क्रियाएँ **प्रतिवर्त** (reflexes) – जो उद्दीपकों के प्रति स्वचालित एवं स्वाभाविक रूप से विद्यमान अनुक्रियाएँ होती हैं, से संचालित होती हैं। ये आनुवंशिक रूप से प्राप्त अतिजीविता तंत्र हैं तथा बाद के पेशीय विकास के लिए ये आधारभूत इकाइयाँ हैं। नवजात शिशुओं को सीखने के अवसर मिलने के पहले प्रतिवर्त अनुकूली तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। नवजात शिशुओं में पाए जाने वाले कुछ प्रतिवर्त; जैसे- खाँसना, पलक झपकाना तथा जँभाई लेना, जीवनपर्यंत बने रहते हैं। कुछ दूसरे प्रतिवर्त मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के परिपक्व होने तथा व्यवहार पर ऐच्छिक नियंत्रण के विकसित हो जाने पर विलुप्त हो जाते हैं (तालिका 4.1 देखें)।

जब मस्तिष्क विकसित होता है, शारीरिक विकास भी अग्रसर होता है। जैसे-जैसे शिशु बढ़ता है, मांसपेशियाँ एवं तंत्रिका तंत्र परिपक्व होते हैं जो सूक्ष्म कौशलों का विकास करते हैं। आधारभूत शारीरिक (पेशीय) कौशलों के अंतर्गत वस्तुओं को पकड़ना एवं उनके पास पहुँचना, बैठना, घुटनों के बल चलना, खड़े होकर चलना और दौड़ना आते हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर शारीरिक (पेशीय) विकास का अनुक्रम सार्वभौमिक होता है।

संवेदी योग्यताएँ : अब तक आप जान चुके हैं कि नवजात शिशु उतने अक्षम नहीं हैं जितना वे दिखते हैं। जन्म के मात्र कुछ घंटे बाद वे अपनी माँ की आवाज़ को पहचान सकते हैं एवं उनमें अन्य संवेदी क्षमताएँ भी होती हैं। नवजात शिशु कितनी अच्छी तरह से देख सकते हैं? नवजात शिशु कुछ उद्दीपकों; जैसे- चेहरों को अन्य उद्दीपकों की तुलना में देखना पसंद करते हैं, यद्यपि यह पसंद जीवन के प्रथम कुछ महीनों में परिवर्तित होती है। प्रौढ़ों की तुलना में नवजात शिशुओं की दृष्टि कम आँकी गई है। छठे महीने तक इसमें सुधार होता है और लगभग एक वर्ष की उम्र तक दृष्टि लगभग प्रौढ़ों के समान (20/20) हो जाती है। क्या नवजात शिशु रंगों को देख सकते हैं? वर्तमान में यह सहमति है कि वे लाल और सफ़ेद रंगों के मध्य विभेदन करने में सक्षम हो सकते हैं परंतु सामान्यतया वे रंग विभेदन में अपूर्ण होते हैं एवं पूर्ण रंग दृष्टि 3 माह की आयु तक विकसित होती है।

नवजात शिशुओं में श्रवण का स्वरूप कैसा होता है? नवजात शिशु जन्म के ठीक बाद सुन सकते हैं। नवजात शिशु जैसे-जैसे विकसित होते हैं उनकी ध्वनि की दिशा निर्धारण की दक्षता में सुधार होता है। नवजात शिशु स्पर्श के प्रति अनुक्रिया करते हैं एवं वे पीड़ा की अनुभूति भी कर सकते हैं। घ्राण एवं स्वाद की दोनों क्षमताएँ भी नवजात शिशुओं में होती हैं।

संज्ञानात्मक विकास : क्या एक तीन वर्ष का बालक चीज़ों को उसी प्रकार से समझेगा जैसे कि एक आठ वर्ष का बालक? जीन पियाजे (Jean Piaget) ने इस बात पर बल दिया है कि बच्चे संसार के बारे में अपनी समझ की रचना सक्रिय रूप से करते हैं। परिवेश से सूचनाएँ उनके मन में मात्र प्रवेश ही नहीं करती हैं बल्कि जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं

तालिका 4.1 नवजात शिशुओं में उपस्थित कुछ मुख्य प्रतिवर्त

प्रतिवर्त	*विवरण*	*विकासात्मक क्रम*
रूटिंग	गाल को छूने पर सिर को घुमाना एवं मुख खोलना।	3 से 6 माह में विलुप्त हो जाते हैं।
मोरो	यदि तीव्र शोर होता है तो बच्चा अपनी कमर को मोड़ते हुए भुजा को आगे की ओर फेंकता है, और फिर अपनी भुजाओं को एक साथ लाता है जैसे कुछ पकड़ रहा हो।	6 से 7 माह में विलुप्त हो जाते हैं (यद्यपि तीव्र शोर के प्रति अनुक्रिया स्थायी होती है)।
पकड़ना	बच्चे की हथेली को यदि उँगली अथवा किसी अन्य वस्तु से दबाया जाता है तो बच्चे की उँगलियाँ उसके इर्द-गिर्द लिपट जाती हैं।	3 से 4 माह में विलुप्त हो जाते है। ऐच्छिक पकड़ से विस्थापित हो जाते हैं।
बेबिन्स्की	यदि बच्चे के पैर के तलवे को ठोका जाता है तो पैर की उँगलियाँ ऊपर की ओर जाती हैं और फिर आगे की ओर मुड़ जाती हैं।	8 से 12 माह में विलुप्त हो जाते हैं।

अतिरिक्त सूचनाएँ अर्जित की जाती हैं और नए विचारों को अंतर्निहित करने के लिए वे अपने चिंतन का अनुकूलन करते हैं, क्योंकि इससे संसार के बारे में उनकी समझ में सुधार होता है। पियाजे का मानना था कि शैशवावस्था से लेकर किशोरावस्था तक बच्चों का मन विचारों की अवस्थाओं की एक शृंखला से गुजरता है (तालिका 4.2 देखें)।

प्रत्येक अवस्था चिंतन के एक विशिष्ट तरीके से परिभाषित होती है एवं आयु से संबद्ध रहती है। यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि यह सोचने का अलग तरीका है न कि सूचना की मात्रा, जो एक अवस्था को दूसरी अवस्था से अधिक उच्च बनाती है। इससे यह भी प्रकट होता है कि आप अपनी उम्र में एक आठ वर्ष के बच्चे की तुलना में क्यों भिन्न प्रकार से सोचते हैं। शैशवावस्था, अर्थात जीवन के प्रथम दो वर्ष, के दौरान बच्चा ज्ञानेंद्रियों एवं वस्तुओं के साथ अंत:क्रिया के माध्यम से देखने, सुनने, स्पर्श करने, उन्हें (वस्तुओं को) मुँह में डालने एवं पकड़ने के द्वारा इस संसार का अनुभव करता है। नवजात शिशु वर्तमान में रहता है। जो उसकी दृष्टि के क्षेत्र से बाहर होता है वह उसके मन से भी बाहर होता है। उदाहरण के लिए, यदि आप बच्चे के सामने उस खिलौने को छिपा देते हैं जिससे वह खेल रहा था, तो छोटा शिशु इस प्रकार से प्रतिक्रिया करेगा जैसे कि कुछ हुआ ही न हो, अर्थात वह खिलौने नहीं ढूँढ़ेगा। बच्चा मान लेता है कि खिलौना नहीं है। पियाजे के अनुसार, इस अवस्था में बच्चे तात्कालिक संवेदी अनुभवों के परे नहीं जाते हैं, अर्थात उनमें **वस्तु स्थायित्व** (object permanence) - यह चेतना या जानकारी की जब वस्तु का प्रत्यक्षण नहीं होता है तब भी उसका अस्तित्व बना रहता है, का अभाव होता है। आठ माह की आयु तक धीरे-धीरे बच्चा अपनी उपस्थिति में आंशिक रूप से छिपाई गई वस्तुओं का पीछा करना प्रारंभ कर देता है।

शिशुओं में वाचिक संप्रेषण का आधार उपस्थित रहता है। शिशुओं में 3 से 6 माह की आयु के बीच बबलाने से स्वरीकरण का प्रारंभ होता है। प्रारंभिक भाषा विकास के बारे में आप अध्याय 8 में पढ़ेंगे।

समाजिक-संवेगात्मक विकास : शिशु जन्म से ही सामाजिक प्राणी होता है। एक शिशु परिचित चेहरों को वरीयता देना प्रारंभ कर देता है और कूकने एवं किलकारी भरने के द्वारा माता-पिता की उपस्थिति के प्रति अनुक्रिया करता है। छ: से आठ माह की आयु तक वे अधिक गतिशील हो जाते हैं एवं अपनी माता के साथ रहना पसंद करने लगते हैं। जब वे नए चेहरे को देख कर डर जाते हैं या अपनी माँ से अलग कर दिए जाते हैं तो वे रोते हैं और पीड़ा की अभिव्यक्ति करते हैं। माता-पिता या देख-रेख करने वाले से पुन: मिलने पर वे मुस्कुराहट या आलिंगन से अपने भाव का प्रदर्शन करते हैं। शिशु एवं उनके माता-पिता (पालनकर्ता) के बीच स्नेह का जो सांवेगिक बंधन विकसित होता है उसे **आसक्ति** (attachment) कहते हैं। हार्लो एवं हार्लो (Harlow and Harlow, 1962) ने एक प्राचीन अध्ययन में बंदरों के बच्चों को जन्म के आठ घंटे बाद ही उनकी माँ

तालिका 4.2 **पियाजे द्वारा प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ**

अवस्था	*सन्निकट आयु*	*विशेषताएँ*
संवेदी-प्रेरक	0-2 वर्ष	शिशु संवेदी अनुभवों का शारीरिक क्रियाओं के साथ समन्वय करते हुए संसार का अन्वेषण करता है।
पूर्व-संक्रियात्मक	2-7 वर्ष	प्रतीकात्मक विचार विकसित होते हैं; वस्तु स्थायित्व उत्पन्न होता है; बच्चा वस्तु के विभिन्न भौतिक गुणों को समन्वित नहीं कर पाता है।
मूर्त संक्रियात्मक	7-11 वर्ष	बच्चा मूर्त घटनाओं के संबंध में युक्तिसंगत तर्कना कर सकता है और वस्तुओं को विभिन्न समूहों में वर्गीकृत कर सकता है। वस्तुओं की मानस प्रतिमाओं पर प्रतिवर्तनीय मानसिक संक्रियाएँ करने में सक्षम होता है।
औपचारिक संक्रियात्मक	11-15 वर्ष	किशोर तर्क का अनुप्रयोग अधिक अमूर्त रूप से कर सकते हैं; परिकल्पनात्मक चिंतन विकसित होते हैं।

से अलग कर दिया। शिशु बंदरों को प्रायोगिक कक्ष में रखा गया एवं उनका पालन-पोषण 6 माह तक कृत्रिम (स्थानापन्न) ''माताओं'', एक तार से बनी हुई तथा दूसरी कपड़े से, के द्वारा किया गया। आधे शिशु बंदरों को तार से बनी माता ने आहार प्रदान किया एवं आधे को कपड़े से बनी माँ ने। बिना इस बात का ध्यान दिए कि बंदर शिशुओं को तार की बनी माँ ने आहार प्रदान किया अथवा कपड़े की बनी माँ ने, उन्होंने कपड़े की माँ को वरीयता दी और उसके साथ अधिक समय व्यतीत किया। यह अध्ययन स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है कि पौष्टिकता अथवा आहार प्रदान करना आसक्ति या लगाव के लिए महत्वपूर्ण नहीं था बल्कि संपर्क-सुख महत्वपूर्ण होता है। आपने भी देखा होगा कि छोटे बच्चे अपने पसंदीदा खिलौने अथवा कंबल के प्रति अधिक लगाव प्रदर्शित करते हैं। इसमें कुछ अप्रत्याशित नहीं है, क्योंकि बच्चे जानते हैं कि कंबल अथवा खिलौने उनकी माँ नहीं है। फिर भी यह उन्हें सुख प्रदान करते हैं। बच्चे जब बड़े हो जाते हैं और स्वयं के बारे में अधिक आश्वस्त हो जाते हैं, वे इन वस्तुओं का परित्याग कर देते हैं।

मानव शिशु अपने माता-पिता अथवा देख-रेख करने वाले के प्रति भी आसक्ति विकसित करते हैं जो लगातार और उपयुक्त ढंग से उनके प्यार और दुलार के संकेतों का उपयुक्त प्रत्युत्तर देते हैं। एरिक एरिक्सन (Erik Erikson) (1968) के अनुसार जीवन का प्रथम वर्ष आसक्ति के विकास के लिए महत्वपूर्ण समय होता है। यह *विश्वास* अथवा *अविश्वास* के विकास की अवस्था को निरूपित करता है। विश्वास का बोध भौतिक सुख की अनुभूति पर निर्मित होता है जो संसार के प्रति एक प्रत्याशा विकसित करता है कि यह सुरक्षित और अच्छा स्थान है। बच्चों में विश्वास का बोध सहानुभूतिपूर्ण एवं संवेदनशील पैतृक प्रभाव द्वारा विकसित होता है। यदि माता-पिता संवेदनशील हैं, स्नेहिल एवं उनमें स्वीकृति प्रदान करने वाले हैं तो यह बच्चे में परिवेश को जानने का मजबूत आधार प्रदान करता है। ऐसे बच्चों में सुरक्षित लगाव के विकास की संभावना बढ़ जाती है। दूसरी तरफ, यदि माता-पिता असंवेदनशील हैं एवं असंतोष प्रदर्शित करते हैं तथा बच्चों में दोष देखते हैं तो इससे बच्चों में आत्म-संदेह की भावना विकसित हो सकती है। सुरक्षित लगाव वाले बच्चे गोद में लेने पर सकारात्मक व्यवहार करते हैं, स्वतंत्रतापूर्वक घूमते हैं एवं खेलते हैं जबकि असुरक्षित लगाव वाले बच्चे अलग होने पर दुश्चिंता की अनुभूति करते हैं तथा रोते-चिल्लाते हैं क्योंकि उनमें भय पाया जाता है और वे विचलित हो जाते हैं। बच्चे के स्वस्थ विकास के लिए संवेदनशील एवं स्नेहिल प्रौढ़ों के साथ घनिष्ठ अंत:क्रियात्मक संबंध प्रथम चरण होता है।

बाल्यावस्था

शैशवावस्था की तुलना में पूर्व-बाल्यावस्था में बच्चे में संवृद्धि मंद हो जाती है। बच्चा शारीरिक रूप से विकसित होता है, उसकी ऊँचाई एवं वज़न में वृद्धि होती है, चलना, दौड़ना, कूदना सीखता है, तथा गेंद के साथ खेलता है। सामाजिक रूप से बच्चे का संसार विस्तृत हो जाता है एवं इसमें माता-पिता के अतिरिक्त परिवार तथा पास-पड़ोस एवं विद्यालय के प्रौढ़ व्यक्ति भी सम्मिलित हो जाते हैं। बच्चा अच्छे एवं बुरे की अवधारणा भी सीखना प्रारंभ कर देता है, अर्थात नैतिकता का बोध भी विकसित हो जाता है। बाल्यावस्था के दौरान, बालकों की शारीरिक क्षमता बढ़ जाती है, वे कार्यों को स्वतंत्र रूप से कर सकते हैं, लक्ष्यों का निर्धारण कर सकते हैं तथा वयस्कों की अपेक्षाओं को पूरा कर सकते हैं। संसार के बारे में अनुभव प्राप्त करने के अवसरों के साथ-साथ मस्तिष्क की बढ़ती हुई परिपक्वता बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में योगदान देती है।

शारीरिक विकास : प्रारंभिक विकास दो सिद्धांतों का अनुसरण करता है: (i) विकास **शिर:पदाभिमुख** (cephalocaudally), अर्थात मस्तिष्क या सिर के क्षेत्र से पैर या निचले हिस्से तक अग्रसर होता है। बच्चे शरीर के निचले भाग से पहले शरीर के ऊपरी भाग पर नियंत्रण प्राप्त करते हैं। आपने देखा होगा कि इसके कारण ही पूर्व-शैशवावस्था में शिशुओं का सिर उनके शरीर के अनुपात में बड़ा होता है अथवा यदि आप एक बच्चे को घुटने के बल चलते हुए देखें तो पाएँगे कि पहले वह भुजाओं का उपयोग करेगा और बाद में पैर का उपयोग, (ii) संवृद्धि शरीर के मध्य से प्रारंभ होती है और बाद में दूर के अंगों की ओर बढ़ती है- **समीप-दूराभिमुख** (proximodistal) प्रवृत्ति, अर्थात बच्चे शरीर के दूरस्थ अंगों से पहले धड़ पर नियंत्रण प्राप्त करते हैं। प्रारंभ में शिशु वस्तुओं तक पहुँचने के लिए पूरे शरीर को घुमाते हैं, धीरे-धीरे वे चीज़ों तक पहुँचने के लिए अपनी भुजाओं को आगे बढ़ाते हैं। ये परिवर्तन परिपक्व हो रहे तंत्रिका तंत्र के फलस्वरूप होते हैं और न कि किसी कमी के कारण क्योंकि दोषपूर्ण दृष्टि वाले बच्चे भी ठीक इसी अनुक्रम का प्रदर्शन करते हैं।

बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते हैं, वे पतले दिखते हैं क्योंकि उनके धड़ की लंबाई बढ़ती है और शरीर में वसा की मात्रा घटती है। शरीर के अन्य किसी अंग की तुलना में मस्तिष्क

और सिर अधिक तेज़ी से विकसित होता है। मस्तिष्क की संवृद्धि और उसका विकास महत्वपूर्ण है क्योंकि ये बच्चों में नेत्र-हस्त समन्वय, पेंसिल को पकड़ना एवं लिखने का प्रयास करना, जैसी योग्यताओं के परिपक्व होने में सहायता प्रदान करता है। मध्य एवं विलंबित बाल्यावस्था में बच्चों के बल एवं आकार में सार्थक रूप से वृद्धि होती है; वज़न में वृद्धि मुख्य रूप से कंकालीय एवं पेशीय तंत्र के साथ-साथ शरीर के कुछ अंगों का आकार बढ़ने के कारण होती है।

पेशीय विकास : बाल्यावस्था के प्रारंभ के वर्षों में स्थूल पेशीय कौशलों के अंतर्गत भुजाओं एवं पैरों का उपयोग करना, तथा अधिक विश्वास तथा उद्देश्यपूर्ण ढंग से परिवेश में घूमना-फिरना सम्मिलित है। सूक्ष्म पेशीय कौशलों - उँगली निपुणता तथा नेत्र-हस्त समन्वय - में पूर्व-बाल्यावस्था में अत्यधिक सुधार होता है। इस अवधि में बच्चे के बाएँ अथवा दाएँ हाथ के लिए वरीयता का भी विकास होता है। पूर्व-बाल्यावस्था में स्थूल एवं सूक्ष्म पेशीय कौशलों में प्रमुख उपलब्धियों को तालिका 4.3 में दिया गया है।

संज्ञानात्मक विकास : बच्चे में वस्तु स्थायित्व के संप्रत्यय को सीखने की योग्यता उसे वस्तुओं को निरूपित करने के लिए मानसिक प्रतीकों का उपयोग करने में सक्षम बनाती है। परंतु, इस अवस्था में बच्चों में उस योग्यता का अभाव होता है जो उन्हें शारीरिक रूप से किए गए कार्यों को मानसिक रूप से करने की सुविधा प्रदान करती है। पूर्व-बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास पियाजे के *पूर्व-संक्रियात्मक विचार* की अवस्था पर ध्यान केंद्रित करता है (तालिका 4.2 देखें)। जो वस्तु भौतिक रूप से उपस्थित नहीं है, उसे मानसिक रूप से निरूपित करने की योग्यता बच्चा प्राप्त करता है।

आपने देखा होगा कि व्यक्तियों, वृक्षों, कुत्ता, घर आदि को निरूपित करने के लिए बच्चे रूपरेखा/चित्र बनाते हैं। प्रतीकात्मक विचार में संलग्न रहने की बच्चे की यह योग्यता उसके मानसिक संसार को विस्तृत करने में सहायक होती है। प्रतीकात्मक विचार में प्रगति होती रहती है। पूर्व-संक्रियात्मक विचार की एक प्रमुख विशेषता *अहंकेंद्रवाद* है, अर्थात बच्चे दुनिया को केवल अपने दृष्टिकोण से देखते हैं और दूसरों के दृष्टिकोण के महत्त्व को समझने में सक्षम नहीं होते हैं। अहंकेंद्रवाद के कारण बच्चे *जीववाद* में लिप्त हो जाते हैं - चिंतन करने कि सभी चीज़ें उन्हीं की तरह सजीव हैं। वे निर्जीव वस्तुओं में जीवन की कल्पना करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि दौड़ते समय बच्चा फिसल कर सड़क पर गिर जाता है तो वह जीववादी चिंतन का प्रदर्शन यह कह कर करेगा कि 'सड़क ने मुझे चोट पहुँचायी'। जैसे-जैसे बच्चे बढ़ते हैं और लगभग 4 से 7 वर्ष की आयु के हो जाते हैं तो वे अपने सभी वैसे प्रश्नों का उत्तर पाना चाहते हैं जैसे: आकाश नीला क्यों है? वृक्ष कैसे बढ़ते हैं? इत्यादि। ऐसे प्रश्न बच्चों को यह जानने में सहायता करते हैं कि चीज़ें जिस रूप में हैं वैसे ही क्यों हैं। पियाजे ने इसे *अंत:प्रज्ञात्मक विचार* की अवस्था कहा। पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था के विचार की एक अन्य विशेषता बच्चों में *केंद्रीकरण* की प्रवृत्ति, अर्थात एक घटना को समझने के लिए किसी एक विशेषता या पक्ष पर ध्यान देना, से परिभाषित होती है। उदाहरण के लिए, एक बच्चा 'बड़े गिलास' में जूस पीने की ज़िद कर सकता है, एक छोटे चौड़े गिलास की तुलना में एक लंबे व पतले गिलास को वरीयता देता है, जबकि दोनों ही गिलास में समान मात्रा में जूस रहता है।

जब बच्चा बड़ा होता है और लगभग 7 से 11 वर्ष की आयु का हो जाता है तब (मध्य एवं विलंबित बाल्यावस्था की

तालिका 4.3 स्थूल एवं सूक्ष्म पेशीय कौशलों में प्रमुख उपलब्धियाँ

आयु वर्ष में	*स्थूल पेशीय कौशल*	*सूक्ष्म पेशीय कौशल*
3 वर्ष	उछलना, कूदना, दौड़ना	ब्लॉक बनाना, तर्जनी एवं अँगूठे की सहायता से वस्तुओं को उठाना
4 वर्ष	प्रत्येक पादान पर एक-एक पैर रखते हुए सीढ़ियों पर चढ़ना एवं उतरना	चित्रात्मक पहेलियों को भली-भाँति जोड़ना
5 वर्ष	तेज़ दौड़ना, दौड़ प्रतिस्पर्धा का आनंद लेना	हाथ, भुजा एवं शरीर ये सभी, आँख की गति के साथ समन्वित होते हैं

अवधि) अंतर्बोधपरक विचार *तार्किक विचार* के द्वारा विस्थापित हो जाता है। यह *मूर्त संक्रियात्मक विचार* की अवस्था है जो संक्रियाओं से बनती है- वे मानसिक क्रियाएँ जो बच्चे को पूर्व में शारीरिक रूप से किए गए कार्यों को मानसिक रूप से करने की सुविधा प्रदान करती हैं। मूर्त संक्रियाएँ भी प्रतिक्रमणीय मानसिक क्रियाएँ हैं। एक सुप्रसिद्ध परीक्षण में बच्चों के सामने बिलकुल एक जैसी चिकनी मिट्टी की दो गेंदें प्रस्तुत की जाती हैं। प्रयोगकर्ता एक गेंद को बेल कर पतली पट्टी के रूप में बना देता है और दूसरी गेंद अपने मूल रूप में बनी रहती है। यह पूछे जाने पर कि किसमें अधिक मिट्टी है, 7-8 साल के बच्चे का उत्तर होगा कि दोनों में ही मिट्टी की समान मात्रा है। यह इसलिए होता है क्योंकि बच्चा गेंद को पतली पट्टी के रूप में बेलना और फिर उसे गेंद के रूप में गोल कर देने की कल्पना कर लेता है, जिसका अर्थ है कि वह मूर्त/वास्तविक वस्तुओं पर प्रतिक्रमणीय मानसिक क्रिया की कल्पना करने में सक्षम है। आपके विचार से एक पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था के बच्चे ने क्या किया होता? वह मात्र एक पक्ष-लंबाई अथवा ऊँचाई पर संभवत: ध्यान देता। मूर्त संक्रियाएँ बच्चे को वस्तु की विभिन्न विशेषताओं पर न कि मात्र एक विशेषता पर ध्यान देने की सुविधा प्रदान करती हैं। यह बच्चे की इस बात को समझने में सहायक होती हैं कि चीज़ों को देखने या समझने के भिन्न-भिन्न तरीके हैं, जिसके परिणामस्वरूप उसके अहंकेंद्रवाद में भी कमी आती है। चिंतन अधिक लचीला हो जाता है और समस्या समाधान करते समय बच्चे विकल्पों के बारे में सोच सकते हैं, अथवा आवश्यकता पड़ने पर अपने द्वारा उपयोग में लाए गए उपायों को मानसिक रूप से दोहरा सकते हैं। पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था का बालक यद्यपि एक वस्तु की विभिन्न गुणों के मध्य संबंध को देखने की योग्यता विकसित कर लेता है, वह अमूर्त चिंतन नहीं कर सकता है, अर्थात वह अब भी वस्तुओं की अनुपस्थिति में विचारों का प्रहस्तन नहीं कर सकता है। उदाहरणार्थ, बीजगणितीय समीकरण को पूरा करने के लिए आवश्यक चरण, अथवा पृथ्वी के अक्षांश या देशांतर रेखाओं की कल्पना करना।

बच्चे की बढ़ती हुई संज्ञानात्मक योग्यताएँ भाषा अर्जन को सुगम बना देती हैं। अध्याय 8 में आप पढ़ेंगे कि बच्चे कैसे शब्दावली एवं व्याकरण का विकास करते हैं।

क्रियाकलाप 4.2

समान आकार के दो पारदर्शी गिलास लीजिए और दोनों में समान मात्रा में जल भरें। अपने विद्यालय के कक्षा 2 तथा कक्षा 5 के बच्चे से पूछें : क्या गिलासों में समान मात्रा में जल है? एक दूसरा लंबा व पतला गिलास लीजिए एवं बच्चे के सामने पहले के किसी एक गिलास का जल इस तीसरे गिलास में भर दीजिए। अब उससे पूछिए कि किस गिलास में अधिक जल है? क्या आपने उनकी अनुक्रियाओं में कोई अंतर पाया?

सामाजिक-सांवेगिक विकास : स्व (self), **लिंग** (gender), तथा **नैतिक** (moral) विकास बच्चों के सामाजिक-सांवेगिक विकास के महत्वपूर्ण आयाम हैं। बाल्यावस्था के प्रारंभिक वर्षों में 'स्व' में कुछ महत्वपूर्ण विकास होते हैं। समाजीकरण के कारण बच्चा यह बोध विकसित कर लेता है कि वह कौन है और वह अपनी पहचान किसकी तरह बनाना चाहता है। विकसित हो रहे स्वतंत्रता के बोध के कारण बच्चे कार्यों को अपने तरीके से करते हैं। एरिक्सन के अनुसार, उनकी (बच्चों) स्वप्रेरित क्रियाओं के प्रति माता-पिता जिस प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं वह पहलशक्ति बोध या अपराध बोध को विकसित करता है। उदाहरण के लिए, साइकिल चलाना, दौड़ना, स्केटिंग जैसे खेलों के लिए स्वतंत्रता एवं अवसर प्रदान करना तथा बच्चों के प्रश्नों का उत्तर देना, उनके द्वारा की गई पहल के लिए आलंबन की अनुभूति उत्पन्न करेगा। इसके विपरीत, यदि उन्हें यह अनुभव कराया जाता है कि उनके प्रश्न अनुपयोगी हैं, तथा उनके द्वारा खेले गए खेल मूर्खतापूर्ण हैं तो संभव है कि बच्चों में स्वयं के द्वारा प्रारंभ की गई क्रियाओं के प्रति दोष-भावना विकसित होगी, जो बच्चों के बाद के जीवन में भी बनी रह सकती है। पूर्व-बाल्यावस्था में आत्मबोध स्वयं को शारीरिक विशेषताओं के आधार पर परिभाषित करने तक सीमित रहता है: मैं लंबा हूँ, उसके बाल काले हैं, मैं एक लड़की हूँ, इत्यादि। मध्य एवं विलंबित बाल्यावस्था में बच्चे में संभवत: स्वयं को अपनी आंतरिक विशेषताओं के आधार पर परिभाषित करने की संभावना बढ़ जाती है; जैसे- 'मैं फुर्तीला हूँ एवं मैं लोकप्रिय हूँ' अथवा 'जब विद्यालय में अध्यापक मुझे कोई दायित्व देते हैं तो मैं गर्व का अनुभव करता हूँ'। स्वयं को मानसिक विशेषताओं के आधार पर परिभाषित करने के अतिरिक्त बच्चों के आत्म-विवरण के अंतर्गत स्व का सामाजिक पक्ष भी आता है, जैसे स्वयं को सामाजिक समूहों के संदर्भ में देखना; जैसे- विद्यालय के संगीत क्लब, पर्यावरण क्लब अथवा किसी धार्मिक समूह का सदस्य होना। बच्चों के आत्मबोध के अंतर्गत सामाजिक तुलना का पक्ष भी आता है। बच्चे संभवत: इसके बारे में भी सोच

सकते हैं कि वे दूसरों की तुलना में क्या कर सकते हैं अथवा क्या नहीं कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, 'मैंने अतुल की तुलना में अधिक अंक प्राप्त किए' अथवा 'मैं कक्षा में दूसरे बच्चों की तुलना में तेज़ दौड़ सकता हूँ'। यह विकासात्मक परिवर्तन, एक व्यक्ति के रूप में दूसरों से स्वयं की भिन्नता स्थापित करने में सहायक होता है।

बॉक्स 4.2 लिंग एवं स्त्री-पुरुष भूमिकाएँ

क्या शतरंज एक पुरुष का खेल है अथवा एक महिला का खेल है अथवा दोनों का? बेकिंग (ब्रेड, केक आदि को बनाना) एक महिला का कार्य है अथवा एक पुरुष का कार्य है? गाड़ी चलाना, वाद-विवाद करना एवं भौतिकी की प्रयोगशाला में प्रयोग करना इनके संबंध में आपका क्या विचार है? अथवा टी.वी. पर बेचे जाने वाले युवा पुरुषों एवं महिलाओं के सामानों पर ध्यान दीजिए? लड़के एवं लड़कियों को कैसा होना चाहिए इनके संबंध में इनसे क्या पता चलता है?

यौन भेद का अस्तित्व है अथवा नहीं इस पर मनोवैज्ञानिकों ने सतर्कतापूर्वक शोध किया है। शोध यह प्रदर्शित करते हैं कि महिलाओं की तुलना में पुरुष अधिक आक्रामक होते हैं। उठक-बैठक, छोटी दूरी की दौड़ तथा लंबी कूद के परीक्षणों में महिलाओं की तुलना में पुरुष अधिक बेहतर निष्पादन करते हैं। महिलाएँ पुरुषों की तुलना में सूक्ष्म एवं बेहतर नेत्र-हस्त समन्वय का प्रदर्शन करती हैं तथा उनके शरीर के जोड़ एवं अंग पुरुषों की तुलना में अधिक लचीले होते हैं। आपकी समझ से इन भिन्नताओं का स्रोत क्या है? क्या ये आवश्यक हैं, अथवा दूसरे शब्दों में क्या महिलाएँ कुछ 'स्त्रियोचित गुण' के साथ जन्म लेती हैं एवं पुरुष कुछ 'पुरुषोचित गुण' के साथ? अथवा क्या ये भिन्नताएँ उस संसार का सर्जन हैं जिसमें हम रहते हैं?

जिस सर्वाधिक शक्तिशाली भूमिका में लोगों का सामाजीकरण हुआ है वह है लिंग भूमिका। ये महिलाओं एवं पुरुषों के लिए उपयुक्त समझे जाने वाले व्यवहारों के एक समूह से परिभाषित होती हैं। यौन (sex) पुरुष या महिला होने के जैविक आयाम को बताता है, जबकि लिंग (gender) महिला या पुरुष होने के सामाजिक आयाम को इंगित करता है। लिंग के विभिन्न पक्ष हैं। इनमें से महिला या पुरुष की लिंग पहचान एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिसे अधिकांश बच्चे तीन या चार वर्ष की आयु का होते-होते अर्जित कर लेते हैं एवं स्वयं को परिशुद्धता से एक लड़का अथवा लड़की के रूप में नामित कर सकते हैं। जब वे बड़े होते हैं तो उनके खिलौनों तथा खेलों की पसंद में इसे देखा जा सकता है।

लिंग भूमिकाएँ, अपेक्षाओं का एक समूह है जो यह प्रस्तावित करती हैं कि महिलाओं एवं पुरुषों को किस प्रकार से सोचना, कार्य करना एवं अनुभव करना चाहिए। लिंग सामाजीकरण पर माता-पिता का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, विशेष रूप से विकास के प्रारंभिक वर्षों में। पुरस्कार एवं दंड के माध्यम से वे बच्चों में लिंग उपयुक्त तथा अनुपयुक्त व्यवहार को उत्पन्न करते हैं। माता-पिता अपनी लड़कियों को स्त्रियोचित तथा लड़कों को पुरुषोचित गुणों को सिखाने के लिए प्रायः पुरस्कार एवं दंड का उपयोग करते हैं। समकक्षियों का प्रभाव भी लिंग सामाजीकरण के लिए एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।

विद्यालयी-आयु के लड़कों की तुलना में विद्यालयी-आयु की लड़कियों को माता-पिता अधिक अनुशासित करते हैं तथा लड़के एवं लड़कियों को अलग-अलग तरह के कार्य सौंपते हैं। दिन-प्रतिदिन की अंतःक्रिया में माता-पिता अपनी पुत्रियों को एक प्रकार का 'निर्भरता प्रशिक्षण' देते हैं एवं अपने पुत्रों को एक प्रकार का 'स्वतंत्रता प्रशिक्षण' देते हैं। कार्टून एवं व्यावसायिक विज्ञापन सहित संचार माध्यम यौन रूढ़ियों को कायम रखने के लिए विख्यात हैं। व्यावसायिक विज्ञापनों में यौन रूढ़ियों पर किए गए शोध यह प्रदर्शित करते हैं कि विभिन्न संस्कृतियों के व्यावसायिक विज्ञापनों में आप्त व्यक्ति के रूप में पुरुष को प्रदर्शित किया गया था तथा महिलाओं को आश्रित एवं घरेलू भूमिकाओं में, अथवा शरीर के लिए उपयोगी उत्पादों को बेचने में महिलाएँ अधिक सक्षम थीं तथा खेल संबंधी उत्पादों को बेचने में पुरुष।

एक बार जब बच्चा पुरुष या महिला की भूमिका सीख जाता है तो वह अपने संसार का संगठन लिंग के आधार पर भी करता है। लिंग पर आधारित सामाजिक-सांस्कृतिक मानकों तथा रूढ़ियों के अनुरूप व्यवहार करने के लिए बच्चों का अवधान एवं व्यवहार एक आंतरिक अभिप्रेरणा के द्वारा निर्देशित होता है। अपनी संस्कृति की लिंग लोकरीतियों के अनुसार बच्चे अपना सक्रिय सामाजीकरण भी करते हैं। एक बार जब वे लिंग मानकों को आत्मसात कर लेते हैं तो वे स्वयं से लिंग उपयुक्त व्यवहार की अपेक्षा करना प्रारंभ कर देते हैं। छोटे लड़के फैंसी ड्रेस प्रतियोगिताओं में लड़कियों के कपड़े पहनने से मना कर सकते हैं। घर-घर खेलते समय लड़कियाँ पिता की भूमिका निभाने से मना कर सकती हैं। एक बार जब वे अपने लिंग से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं तो बच्चे अपनी संस्कृति के अपने ही लिंग के किसी महान व्यक्ति का अनुकरण कर सकते हैं। ''लिंग-प्ररूपण'' (gender typing) तब उत्पन्न होता है जब किसी समाज के महिला एवं पुरुष के लिए उचित अथवा विशिष्ट समझे जाने वाले व्यवहार के अनुरूप व्यक्ति सूचनाओं को कूट-संकेतित तथा संगठित करने के लिए तैयार हो जाता है।

बच्चे जब विद्यालय में प्रवेश करते हैं तो उनका सामाजिक जगत परिवार से बाहर तक विस्तृत हो जाता है। वे अपनी उम्र के मित्रों व समकक्षियों के साथ अधिक समय भी व्यतीत करते हैं। अत: बच्चे अपने समकक्षियों के साथ जो अतिरिक्त समय देते हैं वह उनके विकास को एक रूप प्रदान करता है।

क्रियाकलाप 4.3

अपने मित्रों तथा माता-पिता के सामने एक लड़के की तरह (यदि आप लड़की हैं) अथवा एक लड़की की तरह (यदि आप एक लड़के हैं) कम से कम एक घंटे तक अभिनय कीजिए। अपने अनुभवों का मनन कीजिए तथा अपने व्यवहार के प्रति दूसरों की प्रतिक्रिया पर ध्यान दीजिए। आप उनसे उनकी प्रतिक्रियाओं के बारे में पूछ भी सकते हैं। दूसरे लिंग के व्यक्ति की तरह निष्पादन करने का यह कार्य कितना कठिन था?

नैतिक विकास : बच्चे के विकास का एक दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है मानवीय क्रियाओं के सही या गलत होने के मध्य अंतर करना सीखना। बच्चे जिस तरह से सही एवं गलत के बीच अंतर करना, अपराध बोध की अनुभूति करना, स्वयं को दूसरे व्यक्ति के स्थान पर रखकर देखना तथा जब दूसरे लोग कठिनाई में होते हैं तो उनकी मदद करना सीखते हैं, ये सभी नैतिक विकास के घटक हैं। बच्चे जिस प्रकार संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हैं, लॉरेन्स कोहल्बर्ग (Lawrence Kohlberg) के अनुसार, वैसे ही वे नैतिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हैं। ये अवस्थाएँ आयु से संबद्ध होती हैं। कोहल्बर्ग ने बच्चों का साक्षात्कार किया जिसमें उन्हें ऐसी कहानियाँ सुनाई गईं जिनके पात्र नैतिक दुविधा का सामना कर रहे थे। बच्चों से पूछा गया कि उस दुविधा में पात्रों को क्या करना चाहिए और क्यों? उनके अनुसार अलग-अलग उम्र में बच्चे सही एवं गलत के बारे में भिन्न-भिन्न प्रकार से विचार करते हैं। छोटा बच्चा, अर्थात नौ वर्ष की आयु से पहले, बाह्य एवं प्रभावी व्यक्तियों के संदर्भ में चिंतन करता है। उसके (बच्चे) अनुसार कोई कार्य गलत है क्योंकि उसके लिए वह दंडित किया जाता है तथा सही है क्योंकि उसके लिए उसे पुरस्कृत किया जाता है। जब बच्चा बड़ा होता है, अर्थात पूर्व-किशोरावस्था तक, वह दूसरों द्वारा स्थापित नियमों, जैसे-माता-पिता अथवा समाज के नियमों, के द्वारा नैतिक तर्कना विकसित करता है। बच्चे इन नियमों को स्वयं के नियमों के रूप में स्वीकृत करते हैं। प्रवीण बनने तथा दूसरों की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए (न कि दंड का परिहार करने के लिए) इनको 'आत्मसात' कर लिया जाता है। बच्चे इन नियमों को ऐसे सुनिश्चित दिशा-निर्देश के रूप में देखते हैं जिनका अनुसरण किया जाना चाहिए। इस अवस्था में नैतिक चिंतन अपेक्षाकृत अटल होते हैं। जब वे बड़े होते हैं तो वे धीरे-धीरे व्यक्तिगत नैतिक संहिता या नियमावली विकसित कर लेते हैं।

आप देख चुके हैं कि बाल्यावस्था के अंत में संवृद्धि की अधिक धीमी दर बच्चे को समन्वय तथा संतुलन के कौशलों को विकसित करने में सक्षम बनाती है। भाषा का विकास होता है और बच्चा विवेकपूर्ण तर्कना कर सकता है। सामाजिक रूप से बच्चा सामाजिक व्यवस्था, जैसे-परिवार तथा समसमूह, में अधिक संलिप्त हो जाता है। अगले खंड में किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था की अवधि में मानव विकास में होने वाले परिवर्तनों को रेखांकित किया गया है।

क्रियाकलाप 4.4

एक रोगी गंभीर रूप से बीमार है। कई वर्षों से अस्पताल में भर्ती है और उसमें किसी प्रकार से सुधार नहीं हो रहा है। क्या रोगी की जीवन-रक्षा व्यवस्था को हटा लेना चाहिए? आपका सुखमयमृत्यु, जिसे कभी-कभी 'दया-मृत्यु' भी कहा जाता है, के प्रति क्या दृष्टिकोण है? अपने अध्यापक के साथ इस पर परिचर्चा कीजिए।

किशोरावस्था की चुनौतियाँ

अंग्रेज़ी का शब्द 'एडोलसेंस' (adolescence) लैटिन भाषा के शब्द *एडोलसियर* (adolescere) से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है 'परिपक्व रूप में विकसित होना'। यह व्यक्ति के जीवन में बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य का संक्रमण काल है। किशोरावस्था को सामान्यतया *जीवन की उस अवस्था के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसका प्रारंभ यौवनारंभ से होता है, जब यौन परिपक्वता या प्रजनन करने की योग्यता प्राप्त कर ली जाती है*। इसे जैविक तथा मानसिक दोनों ही रूप से तीव्र परिवर्तन की अवधि माना गया है। यद्यपि इस अवस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तन सार्वभौमिक हैं, किशोरों के अनुभव के सामाजिक तथा मानसिक आयाम सांस्कृतिक संदर्भ पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए, वह संस्कृति जहाँ किशोरावस्था को समस्यापरक अथवा संदेह उत्पन्न करने वाली अवधि के रूप में देखा जाता है, उसमें एक किशोर का अनुभव उस किशोर से भिन्न होगा जो एक ऐसी

संस्कृति में है जहाँ किशोरावस्था को प्रौढ़ व्यवहार और इसलिए दायित्वपूर्ण कार्यों को संपादित करने का प्रारंभ माना जाता है। यद्यपि अधिकांश समाज में किशोरावस्था के लिए कम से कम एक संक्षिप्त अवधि होती है, यह सभी संस्कृतियों के सापेक्ष सार्वभौमिक नहीं है।

शारीरिक विकास : यौवनारंभ या लैंगिक परिपक्वता बाल्यावस्था के अंत को तथा किशोरावस्था के प्रारंभ को इंगित करती है, जो संवृद्धि दर एवं लैंगिक विशेषताओं दोनों में ही आकस्मिक परिवर्तनों के द्वारा परिभाषित होती है। परंतु यौवनारंभ अचानक उत्पन्न होने वाली घटना नहीं है बल्कि यह एक क्रमिक प्रक्रिया का अंग है। यौवनारंभ की अवस्था में स्रावित होने वाले हार्मोन के कारण मूल एवं गौण लैंगिक लक्षण विकसित होते हैं। मूल लैंगिक लक्षणों के अंतर्गत वे लक्षण आते हैं जो प्रजनन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हैं तथा गौण लैंगिक लक्षणों के अंतर्गत लैंगिक परिपक्वता को प्राप्त कर लेने के लक्षण या संकेत आते हैं। त्वरित संवृद्धि, चेहरों पर बालों का उगना तथा स्वर में परिवर्तन आदि से लड़कों में यौवनारंभ से संबंधित परिवर्तन प्रदर्शित होता है। लड़कियों की ऊँचाई में तीव्र संवृद्धि प्राय**: मासिक धर्म प्रारंभ** (menarche) होने के लगभग दो वर्ष पहले शुरू होती है। लड़कों में 12 या 13 वर्ष की उम्र में तथा लड़कियों में 10 या 11 वर्ष की उम्र में शारीरिक विकास में तीव्र संवृद्धि प्रारंभ होती है। यौवनारंभ अनुक्रम में परिवर्तन का पाया जाना एक सामान्य प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए, एक ही कालानुक्रमिक आयु के दो लड़कों (अथवा दो लड़कियों) में एक के यौवनारंभ की अवस्था प्रारंभ होने से पहले ही दूसरे का यौवनारंभ विकास का अनुक्रम पूरा हो सकता है। इसमें आनुवंशिकता एवं परिवेश दोनों की ही महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। उदाहरण के लिए, समरूप-यमज में भ्रातृ-यमज की तुलना में मासिक धर्म लगभग एक ही समय प्रारंभ होता है। आमतौर पर संपन्न परिवार की लड़कियों में गरीब परिवार की लड़कियों की तुलना में मासिक धर्म कुछ पहले प्रारंभ होता है। ऐतिहासक प्रवृत्तियाँ प्रदर्शित करती हैं कि औद्योगिक राष्ट्रों में मासिक धर्म प्रारंभ होने की आयु घट रही है जो बेहतर पोषण एवं चिकित्सकीय सुविधाओं में उन्नति को प्रदर्शित करती है।

किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक विकास के साथ अनेक मानसिक परिवर्तन भी होते हैं। यौवनारंभ के आस-पास किशोर विपरीत लिंगी सदस्यों एवं यौन संबंधी मामलों में अधिक रुचि का प्रदर्शन करते हैं एवं यौन-अनुभूतियों के प्रति एक नयी जागरूकता विकसित होती है। कामुकता या यौन संबंधी विषयों पर अधिक ध्यान देना अनेक कारकों के कारण होता है; जैसे- जैविक परिवर्तनों के प्रति सजगता तथा समकक्षियों, माता-पिता एवं समाज द्वारा कामुकता पर अधिक बल देना। इसके बावजूद अनेक किशोरों में काम-व्यवहार के प्रति उपयुक्त ज्ञान का अभाव होता है अथवा उनमें इसके प्रति अनेक भ्रांतियाँ होती हैं। यौन एक ऐसा विषय है जिस पर माता-पिता बच्चों से परिचर्चा करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं, इसलिए किशोर यौन संबंधी मामलों में गोपनीयता बरतने लगते हैं जो सूचनाओं के आदान-प्रदान तथा संप्रेषणीयता को कठिन बना देता है। एड्स एवं यौन-संक्रमित अन्य रोगों के खतरे के कारण वर्तमान समय में किशोरों में कामुकता के प्रति अधिक ध्यान दिया जा रहा है।

यौन पहचान का विकास यौन-उन्मुखता को परिभाषित करता है एवं काम-व्यवहार को निर्देशित करता है। इस रूप में यह किशोरों के लिए एक महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्य बन जाता है। यौवनारंभ के आरंभ होने पर आप स्वयं के बारे में क्या सोचते थे? किशोर इस विषय में विचारमग्न रहते हैं कि वे कैसे दिखते हैं और वे जैसा दिखते हैं उसका मानसिक बिंब बनाते रहते हैं। अपने शारीरिक-स्व अथवा शारीरिक परिपक्वता को स्वीकार करना किशोरावस्था में एक दूसरा महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्य है। किशोरों को अपने शारीरिक रंग-रूप का एक वास्तविक बिंब बनाने की आवश्यकता होती है जो उन्हें स्वीकार्य हो। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि यौवनारंभ की अवस्था में शारीरिक परिवर्तनों के साथ-साथ संज्ञानात्मक एवं सामाजिक परिवर्तन भी होते हैं।

संज्ञानात्मक विकासात्मक परिवर्तन : किशोर के विचार अधिक अमूर्त, तर्कपूर्ण एवं आदर्शवादी होते हैं। अपने तथा दूसरों के विचारों का, एवं दूसरे उनके बारे में क्या सोचते हैं इसका मूल्यांकन करने में वे अधिक सक्षम हो जाते हैं। किशोरों में तर्कना की विकसित हो रही योग्यता उन्हें संज्ञानात्मक एवं सामाजिक सजगता का एक नया स्तर प्रदान करती है। पियाजे का मानना था कि *औपचारिक संक्रियात्मक विचार* 11 से 15 वर्ष की आयु के बीच उत्पन्न होते हैं। इस अवस्था के दौरान किशोर का चिंतन वास्तविक मूर्त अनुभवों से आगे तक विस्तृत हो जाता है एवं वे उन अनुभवों के बारे में अधिक अमूर्त रूप से चिंतन एवं तर्कना प्रारंभ कर देते हैं। अमूर्त होने के अतिरिक्त किशोरों के विचार आदर्शवादी भी होते हैं। किशोर स्वयं तथा दूसरों की आदर्श विशेषताओं के बारे में

सोचना प्रारंभ कर देते हैं तथा स्वयं की दूसरों से तुलना इन आदर्श मानकों के आधार पर करते हैं। उदाहरण के लिए, एक आदर्श माता-पिता कैसे होंगे वे इसके बारे में सोच सकते हैं एवं अपने माता-पिता की तुलना इन आदर्श मानकों से करते हैं। कभी-कभी यह किशोरों को विस्मय में डाल सकता है कि नए आदर्श मानकों में से वे किन मानकों को अपनाएँ। विकास की प्रारंभिक अवस्था से गुजर रहे बच्चों द्वारा प्रयुक्त प्रयत्न-त्रुटि उपागम के विपरीत समस्या समाधान करने में किशोरों का चिंतन अधिक व्यवस्थित होता है। वे कार्य करने के संभावित तरीकों 'कुछ चीज़ें वैसे ही क्यों हो रही है' के बारे में सोचते हैं, एवं क्रमबद्ध तरीके से समाधान को ढूँढ़ते हैं। पियाजे ने इस प्रकार के तर्कपूर्ण चिंतन को **परिकल्पनात्मक निगमनात्मक तर्कना** (hypothetical deductive reasoning) कहा।

तर्कपूर्ण विचार नैतिक तर्कना के विकास को भी प्रभावित करते हैं। सामाजिक नियमों को निरपेक्ष मानक नहीं माना जाता है एवं नैतिक चिंतन कुछ लचीलापन प्रदर्शित करता है। किशोर वैकल्पिक नैतिक संहिता को जानते हैं, विकल्पों की खोज करते हैं, और उसके बाद एक व्यक्तिगत नैतिक संहिता का निश्चय करते हैं। उदाहरण के लिए, क्या मुझे सिगरेट पीनी चाहिए क्योंकि मैं जितने भी लोगों को जानता हूँ वे सभी सिगरेट पीते हैं? क्या परीक्षाओं में नकल करना नैतिक है? यह किशोरों में सामाजिक मानकों को न मानने की संभावना भी उत्पन्न करता है यदि वे उनके व्यक्तिगत नैतिक संहिता के विरुद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए, इस उम्र में व्यक्ति एक विरोध प्रदर्शन रैली में प्रतिभागिता कॉलेज के मानकों का पालन करने या उन मानकों के अनुरूप व्यवहार करने के लिए नहीं बल्कि एक निश्चित कारण के लिए करता है।

किशोर भी एक विशिष्ट प्रकार का अहंकेंद्रवाद विकसित करते हैं। डेविड एलकाईंड (David Elkind) के अनुसार **काल्पनिक श्रोता** (imaginary audience) एवं **व्यक्तिगत दंतकथा** (personal fable), किशोरों के अहंकेंद्रवाद के दो घटक हैं। काल्पनिक श्रोता किशोरों का एक विश्वास है कि दूसरे लोग भी उनके प्रति उतने ही ध्यानाकर्षित हैं जितने की वे स्वयं। वे कल्पना करते हैं कि लोग हमेशा उन्हीं पर ध्यान दे रहे हैं एवं उनके प्रत्येक व्यवहार का प्रेक्षण कर रहे हैं। एक लड़के की कल्पना कीजिए जो सोचता है कि उसकी शर्ट पर लगे स्याही के धब्बे पर लोग ध्यान देंगे, अथवा एक लड़की जिसके गालों पर फुंसियाँ हैं, सोचती है कि लोग सोचेंगे कि उसकी त्वचा कितनी खराब है। यह वही काल्पनिक श्रोता है जो उसे अत्यधिक आत्म-सचेत बना देता है। व्यक्तिगत दंतकथा किशोरों की अहंकेंद्रवाद का एक भाग है जिसमें स्वयं के अद्वितीय होने (अपने तरह का अकेला व्यक्ति होने) का भाव निहित है। किशोरों में अद्वितीयता का बोध उन्हें यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि कोई भी व्यक्ति उसको या उसकी अनुभूतियों को नहीं समझता है। उदाहरण के लिए, एक किशोरी सोचती है कि एक मित्र के द्वारा विश्वासघात किए जाने के कारण जिस पीड़ा का अनुभव वह कर रही है उसे कोई भी महसूस नहीं कर सकता है। किशोरों को माता-पिता से यह कहते सुनना बहुत ही आम बात है कि 'आप मुझे समझ नहीं पाते हैं'। अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता या अद्वितीयता के बोध को बनाए रखने के लिए वे वास्तविकता से दूर की एक दुनिया बनाने के लिए, स्वयं से संबद्ध कल्पनाओं से भरी कहानियों को गढ़ सकते हैं। व्यक्तिगत दंतकथाएँ प्राय: किशोरों की डायरी का भाग होती हैं।

एक पहचान का निर्माण करना : आपने ऐसे प्रश्नों के उत्तर को ढूँढ़ने का प्रयास अवश्य किया होगा: मैं कौन हूँ? मुझे किन विषयों को पढ़ना चाहिए? क्या मैं ईश्वर में विश्वास रखता हूँ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर में अपने आत्म-बोध को परिभाषित करने की चाह अथवा **पहचान** (identity) की खोज निहित है। *आप कौन हैं और आपके मूल्य, प्रतिबद्धता एवं विश्वास क्या हैं, यही पहचान है।* अपने माता-पिता से अलग अपनी एक पहचान स्थापित करना किशोरों का एक प्रमुख कार्य है। किशोरावस्था में विलग्नता या अनासक्ति की एक प्रक्रिया व्यक्ति को वैयक्तिक विश्वासों का एक ऐसा पुंज विकसित करने में सक्षम बनाती है जो अद्वितीय रूप से उनका अपना होता है। एक पहचान प्राप्त करने की प्रक्रिया में किशोर अपने माता-पिता के साथ तथा स्वयं अपने अंदर द्वंद्व का अनुभव कर सकते हैं। वे किशोर जो परस्पर-विरोधी पहचानों की समस्या को सुलझा सकते हैं वे एक नए आत्म बोध को विकसित कर लेते हैं। वे किशोर जो इस पहचान के संकट से उबर पाने में सक्षम नहीं होते हैं वे भ्रमित हो जाते हैं। एरिक्सन के अनुसार, यह 'पहचान भ्रम' व्यक्ति को अपने साथियों तथा परिवार से स्वयं को अलग कर लेने के लिए प्रेरित कर सकता है; अथवा वे भीड़ में अपनी पहचान खो सकते हैं। एक तरफ किशोर स्वतंत्रता की इच्छा रख सकते हैं और दूसरी तरफ वे इससे डरते भी हैं और अपने माता-पिता पर अत्यधिक निर्भरता भी प्रदर्शित करते हैं। आत्म-विश्वास और असुरक्षा की भावना के बीच शीघ्रता से परिवर्तित होते रहना इस अवस्था

की एक विशिष्टता है। किशोर कभी 'अपने को बच्चे की तरह समझे जाने' की शिकायत करते हैं तो कभी अपने माता-पिता पर निर्भर होकर सुख-चैन की तलाश करते हैं। एक पहचान प्राप्त करने में स्वयं में निरंतरता और एकरूपता की खोज करना, अधिक उत्तरदायित्वों को वहन करना, तथा वह कौन है, अर्थात एक पहचान, का स्पष्ट बोध प्राप्त करना सन्निहित है।

किशोरावस्था में पहचान का निर्माण अनेक कारकों से प्रभावित होता है। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पारिवारिक तथा सामाजिक मूल्य, संजातीय पृष्ठभूमि, तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर, ये सभी समाज में एक स्थान प्राप्त करने के लिए किशोरों द्वारा किए गए प्रयास पर प्रभावी रहते हैं। जब किशोर घर से बाहर अधिक समय व्यतीत करने लगता है तो पारिवारिक संबंध कम महत्वपूर्ण हो जाते हैं और वे समकक्षियों के सहयोग एवं स्वीकृति की प्रबल आवश्यकता विकसित कर लेते हैं। समकक्षियों के साथ अधिक अंत:क्रिया उन्हें अपने सामाजिक कौशलों को सुधारने तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक व्यवहारों को परखने का अवसर प्रदान करती है। समकक्षी तथा माता-पिता ये दो शक्तियाँ हैं जिनका किशोरों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। समय-समय पर माता-पिता के साथ संघर्षपूर्ण परिस्थितियाँ समकक्षियों के साथ तादात्म्य स्थापित करने की प्रवृति को बढ़ाती हैं। परंतु सामान्यतया समकक्षी एवं माता-पिता अनुपूरक का कार्य करते हैं और किशोरों की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। व्यावसायिक प्रतिबद्धता किशारों की पहचान निर्माण को प्रभावित करने वाला एक दूसरा कारक है। 'बड़े होकर आप क्या बनेंगे?' इस प्रश्न के लिए भविष्य के संबंध में सोचने की योग्यता एवं वास्तविक तथा प्राप्य लक्ष्यों को निर्धारित करने की आवश्यकता होती है। कुछ संस्कृतियों में युवाओं को व्यवसाय चयन की स्वतंत्रता दी जाती है जबकि कुछ दूसरी संस्कृतियों में इस चुनाव के लिए बच्चों को विकल्प नहीं दिए जाते हैं। माता-पिता के द्वारा लिए गए निर्णय को ही बच्चों द्वारा स्वीकार किए जाने की संभावना रहती है। विषयों के चयन के संबंध में जब आप निर्णय कर रहे थे उस समय का आपका अपना अनुभव क्या है? विद्यालयों में व्यावसायिक परामर्श विद्यार्थियों को विभिन्न पाठ्यक्रमों एवं नौकरियों के मूल्यांकन करने के लिए सूचनाएँ प्रदान करता है और व्यवसाय चयन के संबंध में निर्णय लेने के लिए निर्देशन प्रदान करता है।

कुछ प्रमुख चिंताएँ : एक वयस्क के रूप में जब हम अपने किशोरावस्था के दिनों के बारे में मनन करते हैं और उस अवधि के द्वंद्वों, अनिश्चितताओं, कभी-कभार के अकेलेपन, और समूह के दबाव को याद करते हैं तब हम यह महसूस करते हैं कि निश्चित ही वह एक अतिसंवेदनशील अवधि थी। किशोरावस्था में समकक्षियों का प्रभाव, नयी अर्जित स्वतंत्रता, अनसुलझी समस्याएँ आपमें से अनेक लोगों के लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न कर सकती हैं। समकक्षियों के दबाव के अनुसार चलना सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही हो सकता है। किशोर प्राय: ऐसी स्थितियों का सामना करते हैं जिसमें सिगरेट, शराब, मादक पदार्थों के सेवन तथा माता-पिता द्वारा बनाए गए नियमों को तोड़ने के संबंध में निर्णय लेना होता है। इस पर बहुत ध्यान न देते हुए कि इनका क्या प्रभाव हो सकता है, इस प्रकार के निर्णय ले लिए जाते हैं। किशोर अनिश्चितता, अकेलापन, आत्म-संदेह, दुश्ंचिता, तथा स्वयं एवं स्वयं के भविष्य के प्रति दुश्ंचिता आदि का सामना कर सकते हैं। जब वे विकासात्मक चुनौतियों को दूर कर लेते हैं तब उनमें उत्तेजना, हर्ष, तथा सक्षमता की अनुभूतियों के अनुभव की भी संभावना रहती है। अब आप किशोरों की कुछ प्रमुख चुनौतियों; जैसे- अपचार, मादक द्रव्यों का दुरुपयोग, तथा आहार ग्रहण संबंधी विकारों के बारे में पढ़ेंगे।

अपचार : अपचार विविध प्रकार के व्यवहारों को इंगित करता है जिसमें सामाजिक रूप से अस्वीकृत व्यवहारों से लेकर विधिक अपराध तथा आपराधिक कृत्य भी सम्मिलित हैं। कर्त्तव्यविमुखता, घर से भाग जाना, चोरी या सेंधमारी, या बर्बरतापूर्ण कृत्य इसके उदाहरण हैं। अपचार तथा व्यवहारपरक समस्याओं वाले किशोरों में नकारात्मक आत्म-पहचान, कम विश्वास, और उपलब्धि का निम्न स्तर होता है। अपचार प्राय: माता-पिता के कम सहयोग, अनुपयुक्त अनुशासन, तथा पारिवारिक विवाद से जुड़ा होता है। ध्यानाकर्षण एवं समकक्षियों में लोकप्रियता अर्जित करने के लिए प्राय: वैसे किशोर समाजविरोधी कृत्य करते हैं जो ऐसे समुदायों से आते हैं जिसमें गरीबी, बेरोजगारी एवं मध्यवर्ग से भिन्नता की भावना होती है। परंतु अधिकांश अपचारी बच्चे हमेशा के लिए अपचारी नहीं हो जाते हैं। अपचारी व्यवहार को कम करने में ऐसे कारक सहायक होते हैं; जैसे- समसमूह का बदल जाना, अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति अधिक सजग हो जाना और आत्म-अर्ध की भावना को विकसित करना, भूमिका-प्रतिरूप के सकारात्मक व्यवहारों का अनुकरण करना, नकारात्मक अभिवृत्तियों को तोड़ना, एवं नकारात्मक आत्म-धारणा को सुधारना।

मादक द्रव्यों का दुरुपयोग : किशोरावस्था का समय सिगरेट, मद्य व मादक पदार्थों के सेवन के लिए विशिष्ट रूप

से अतिसंवेदनशील है। दबाव से समायोजन स्थापित करने के एक तरीके के रूप में कुछ किशोर सिगरेट पीने या मादक पदार्थों के सेवन का सहारा लेते हैं। यह समायोजी कौशलों के विकास एवं दायित्वपूर्ण निर्णयन के विकास को बाधित कर सकता है। सिगरेट पीने या मादक पदार्थों के सेवन करने के अनेक कारण हो सकते हैं; जैसे- समकक्षियों का दबाव एवं समूह द्वारा स्वीकृत किए जाने की किशोर की आवश्यकता, अथवा प्रौढ़ों की तरह व्यवहार करने की इच्छा, अथवा विद्यालय के कार्य या सामाजिक दायित्वों के दबाव से पलायन की आवश्यकता आदि। निकोटिन की व्यसन डालने की शक्ति के कारण सिगरेट पीना बंद करना कठिन हो जाता है। यह पाया गया है कि वे किशोर जो मादक पदार्थों, शराब तथा निकोटिन उपयोग के लिए संवेदनशील हैं, वे आवेगशील, आक्रामक, उत्कंठित, अवसादी एवं अविश्वसनीय होते हैं तथा उनका आत्म-सम्मान का स्तर कम होता है एवं उनमें उपलब्धि की प्रत्याशा भी कम होती है। समकक्षी दबाव और अपने समसमूह के बीच रहने की आवश्यकता किशोर को अपने समकक्षियों की माँगों के अनुरूप मादक द्रव्य, मदिरा एवं धूम्रपान का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है या उसको अपना उपहास सहन करने के लिए मजबूर करती है। यदि मादक पदार्थों का उपयोग लंबे समय तक जारी रहता है तो यह शरीरक्रियात्मक निर्भरता, अर्थात मादक पदार्थ, शराब या निकोटिन की लत, को जन्म दे सकता है और किशोरों के शेष जीवन के लिए एक गंभीर खतरा हो सकता है। मादक द्रव्यों के उपयोग को रोकने में माता-पिता, समकक्षियों, भाई-बहनों, एवं वयस्कों के साथ सकारात्मक संबंध की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नयी दिल्ली स्थित सोसाइटी फॉर थिएटर इन एजुकेशन प्रोग्राम भारत में मादक द्रव्यरोधी एक सफल कार्यक्रम है। यह 13 से 25 वर्ष के लोगों के मनोरंजन के लिए नुक्कड़ नाटकों का आयोजन करती है जिसमें यह शिक्षा दी जाती है कि मादक पदार्थों का सेवन कैसे रोकें। यूनाइटेड नेशंस इंटरनेशनल ड्रग कंट्रोल प्रोग्राम (यू.एन.डी.सी.पी.) ने इस कार्यक्रम को एक उदाहरण के रूप में चुना है जिसे इस क्षेत्र के गैर-सरकारी संगठनों को भी अपनाना चाहिए।

आहार ग्रहण संबंधी विकार : किशोरों का स्वयं के प्रति मनोग्रस्ति, कल्पनालोक में रहना तथा समकक्षियों से तुलना करना ऐसी परिस्थितियों को जन्म देता है जिससे वे अपने शरीर के प्रति मनोग्रस्ति विकसित कर लेते हैं। *एनोरेक्सिया नरवोसा* एक ऐसा ही आहार ग्रहण संबंधी विकार है जिसमें स्वयं को भूखा रखते हुए दुबला बनने का कठिन प्रयास किया जाता है। किशोरों को अपने भोजन से कुछ खाद्य पदार्थों को निकालते अथवा केवल दुर्बल बनाने वाले खाद्य पदार्थों का ही सेवन करते देखा जाना बहुत ही सामान्य घटना है। संचार माध्यम भी दुबलेपन या छरहरेपन को सर्वाधिक वांछनीय छवि के रूप में प्रदर्शित करते हैं, और छरहरेपन की ऐसी फैशनेबल छवि का अनुकरण एनोरेक्सिया नरवोसा को जन्म देता है। *क्षुधतिशयता* या बुलिमिया आहार ग्रहण संबंधी विकार का एक दूसरा प्रकार है जिसमें व्यक्ति अत्यधिक भोजन करने का एक ऐसा प्रारूप अपनाता है जिसमें वह स्वादिष्ट भोजन करता रहता है और उसके बाद अपने प्रयास से वमन करके अथवा किसी विरेचक का उपयोग करके उसका विरेचन कर देता है और बीच-बीच में उपवास भी रखता है। एनोरेक्सिया नरवोसा तथा बुलिमिया मुख्य रूप से महिलाओं के विकार हैं जो शहरी परिवारों में अधिक पाए जाते हैं।

प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था

प्रौढ़ावस्था

एक प्रौढ़ सामान्यतया एक ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जाता है जो दायित्वों का निर्वहन करता है, परिपक्व व स्वावलंबी है तथा समाज से अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है। इन गुणों के विकास में भिन्नता पाई जाती है, जो यह प्रदर्शित करता है कि व्यक्ति के वयस्क बनने अथवा वयस्कों की भूमिकाओं को ग्रहण करने के समय मे अंतर होता है। कुछ लोग अपने कॉलेज अध्ययन के साथ नौकरी भी करते हैं अथवा वे शादी कर सकते हैं तथा पढ़ाई छोड़ देते हैं। कुछ लोग आर्थिक रूप से स्वतंत्र होते हुए और विवाह के बाद भी अपने माता-पिता के साथ ही रहते हैं। प्रौढ़ों की भूमिकाओं को ग्रहण करना व्यक्ति की सामाजिक परिस्थिति से निर्देशित होता है। जीवन की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं (जैसे- विवाह, नौकरी, बच्चों को जन्म देना) के लिए सर्वोपयुक्त समय क्या होता है इस संदर्भ में एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्नता होती है, परंतु किसी एक संस्कृति के अंदर प्रौढ़ के विकास क्रम में समानता होती है।

प्रारंभिक प्रौढ़ावस्था के दो मुख्य कार्य हैं, प्रौढ़ जीवन की संभावनाओं को तलाशना तथा एक स्थाई जीवन की संरचना

का विकास करना। उम्र का 20वाँ वर्ष प्रौढ़ों के विकास के एक नए दौर को निरूपित करता है। धीरे-धीरे निर्भरता से स्वतंत्रता की ओर एक परिवर्तन उत्पन्न होता है। एक युवा व्यक्ति जिस प्रकार का जीवन, विशेष रूप से विवाह एवं जीविका के संदर्भ में, जीना चाहता है उसका एक बिंब इस प्रकार के परिवर्तन को इंगित करता है।

जीविका एवं कार्य : उम्र के 20वें एवं 30वें वर्ष के लोगों के लिए एक जीविका प्राप्त करना, व्यवसाय का चयन करना तथा एक जीविका विकसित करना महत्वपूर्ण कार्य होता है। व्यावसायिक जीवन में प्रवेश करना किसी भी व्यक्ति के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना होती है। विभिन्न प्रकार के समायोजन करने, अपनी दक्षता व निष्पादन को सिद्ध करने, प्रतिस्पर्धा का सामना करने तथा अपने एवं नियोजक की प्रत्याशाओं के प्रति समायोजन स्थापित करने से संबंधित अनेक प्रकार की आशंकाएँ होती हैं। नयी भूमिकाओं एवं दायित्वों का यह आरंभ भी होता है। जीविका विकसित करना एवं उसका मूल्यांकन करना प्रौढ़ावस्था का एक मुख्य कार्य बन जाता है

विवाह, मातृपितृत्व एवं परिवार : वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने पर युवा वयस्कों को दूसरे व्यक्ति को समझना (यदि वह पहले से ज्ञात नहीं है) एवं एक दूसरे की पसंद, नापसंद एवं रुचि को जानना इत्यादि के प्रति समायोजन स्थापित करना पड़ता है। यदि दोनों साथी कार्यरत हैं तो समायोजन के लिए घर की भूमिकाओं और दायित्वों के निष्पादन में सहभागिता आवश्यक होती है।

विवाह के अतिरिक्त, माता या पिता बनना युवा वयस्क के जीवन में एक कठिन एवं दबावमय संक्रमण होता है, यद्यपि यह सामान्यतया बच्चे के लिए प्रेम की अनुभूति से जुड़ा होता है। वयस्क व्यक्ति मातृत्व या पितृत्व का अनुभव किस प्रकार करते हैं यह विभिन्न परिस्थितियों; जैसे- परिवार में बच्चों की संख्या, सामाजिक आलंबन की उपलब्धता तथा विवाहित युगल की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता से प्रभावित होता है।

पति-पत्नी का तलाक अथवा किसी एक की मृत्यु एक ऐसी पारिवारिक संरचना को जन्म देती है जिसमें एकल प्रवज या तो माता या पिता में से किसी एक को बच्चों की जिम्मेदारी लेनी होती है। आज के युग में बहुत सी स्त्रियाँ घर से बाहर रोज़गार ढूँढ़ रही हैं जो एक दूसरे प्रकार के परिवार को जन्म दे रहा है जिसमें माता-पिता दोनों ही कार्यरत होते हैं। जब माता-पिता दोनों कार्यरत होते हैं तो दबाव उत्पन्न करने वाले कारक एकल कार्यरत प्रवज के समान ही होते हैं, उदाहरणार्थ, बच्चों की देखभाल करना, उनके विद्यालय का कार्य देखना, बीमारियों तथा घर एवं कार्यालय के कार्यभार से समायोजन स्थापित करना इत्यादि। मातृत्व-पितृत्व दबाव से जुड़े होने के बावजूद, संवृद्धि एवं संतुष्टि के लिए अद्वितीय अवसर प्रदान करता है तथा अगली पीढ़ी से संलग्नता स्थापित करने एवं उन्हें निर्देशित करने के तरीके के रूप में देखा जाता है।

अधेड़ावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तन शरीर में परिपक्वता से संबंधित परिवर्तनों के कारण से होते हैं। यद्यपि इन परिवर्तनों के उत्पन्न होने की गति में व्यक्तियों में भिन्नता होती है, लगभग सभी मध्य आयु के लोग अपनी शारीरिक क्रिया के कुछ पक्षों में धीरे-धीरे होने वाले ह्रास का अनुभव करते हैं; जैसे- दृष्टि एवं चमक के प्रति संवेदनशीलता में ह्रास, कम सुनाई देना तथा शारीरिक रंग-रूप में परिवर्तन (जैसे- झुर्रियाँ, बालों का सफ़ेद अथवा पतला होना, वज़न में वृद्धि होना)। क्या प्रौढ़ावस्था में संज्ञानात्मक योग्यताओं में परिवर्तन होता है? यह माना जाता है कि कुछ संज्ञानात्मक योग्यताओं में उम्र के साथ ह्रास होता है जबकि कुछ में नहीं। अल्पकालिक स्मृति की तुलना में दीर्घकालिक स्मृति के संकृत्यों में स्मृति का ह्रास अधिक होता है। उदाहरण के लिए, एक मध्य आयु का व्यक्ति एक टेलीफोन नंबर सुनने के तुरंत बाद उसे याद रखता है परंतु कुछ दिनों के बाद वह उसका स्मरण उतनी अच्छी तरह से नहीं कर पाता है। स्मृति में अधिक ह्रास देखा जाता है जबकि उम्र के साथ प्रज्ञान बढ़ सकता है। यह स्मरण रहे कि प्रत्येक आयु में बुद्धि में वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है और जैसे सभी बच्चे विशिष्ट नहीं होते हैं वैसे ही सभी प्रौढ़ भी प्रज्ञान नहीं होते हैं।

वृद्धावस्था

वृद्धावस्था कब प्रारंभ होती है यह बताना आसान नहीं है। परंपरागत रूप से सेवानिवृत्ति को वृद्धावस्था से जोड़ा जाता था। अब जबकि लोग लंबे समय तक जी रहे हैं, नौकरी से सेवानिवृत्ति की आयु बदल रही है एवं वृद्धावस्था को परिभाषित करने वाला अपच्छेदित बिंदु ऊपर की ओर बढ़ रहा है। वृद्धों को जिन चुनौतियों से समायोजन करना होता है उनमें सेवानिवृत्ति,

विधवापन, बीमारी और परिवार में मृत्यु सम्मिलित हैं। कुछ अर्थों में वृद्धों की छवि में परिवर्तन हो रहा है। अब कुछ ऐसे लोग हैं जो 70 या उससे अधिक की उम्र पार कर चुके हैं और अत्यधिक सक्रिय, ऊर्जस्वी तथा सर्जनशील हैं। ये लोग दक्ष होते हैं और इसलिए जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समाज के द्वारा इन्हें महत्त्व दिया जाता है। विशिष्ट रूप से राजनीति, साहित्य, व्यापार, कला तथा विज्ञान में वृद्ध लोग हैं। वृद्धावस्था से जुड़ा यह मिथक परिवर्तित हो रहा है कि यह व्यक्ति को अक्षम करने वाला एवं इसलिए जीवन का एक भयावह चरण है।

निस्संदेह वृद्धावस्था के अनुभव सामाजिक-आर्थिक दशाओं, स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता, लोगों की अभिवृत्ति, समाज की अपेक्षाओं तथा उपलब्ध आलंबन व्यवस्था पर निर्भर करते हैं। प्रौढ़ावस्था के प्रारंभिक वर्षों में नौकरी अधिक महत्वपूर्ण होती है। उसके बाद परिवार अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है और इन सबके बाद स्वास्थ्य व्यक्ति के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा बन जाता है। स्पष्ट रूप से हमारे प्रौढ़ जीवन में स्वस्थ तरीके से वयोवृद्धि इन बातों पर निर्भर है; जैसे- हम लोग अपने कार्य में कितने प्रभावशाली हैं, हमारे परिवार में हम लोगों के संबंध कितने प्रेमपूर्ण हैं, हमारी मित्रता कितनी अच्छी है, हम कितने स्वस्थ हैं, एवं संज्ञानात्मक रूप से हम कितने चुस्त-दुरुस्त हैं।

सक्रिय व्यावसायिक जीवन से सेवानिवृत्त होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। कुछ लोग सेवानिवृत्ति को एक नकारात्मक परिवर्तन के रूप में देखते हैं। वे मानते हैं कि यह संतुष्टि एवं आत्म-सम्मान के एक महत्वपूर्ण स्रोत से अलगाव है। दूसरे लोग इसे जीवन में एक ऐसे परिवर्तन के रूप में देखते हैं जो उन्हें अपनी रुचि के काम को करने के लिए अधिक समय प्रदान करता है। यह देखा गया है कि जो वृद्ध वयस्क नए अनुभवों के प्रति खुला दृष्टिकोण रखते हैं, अधिक प्रयासशील रहते हैं एवं उपलब्धि उन्मुख व्यवहार को वरीयता देते हैं वे स्वंय को व्यस्त रखना पसंद करते हैं एवं भली प्रकार से समायोजित होते हैं।

वृद्ध वयस्कों को भी पारिवारिक संरचना में परिवर्तन तथा नयी भूमिकाओं (दादा-दादी) से समायोजन करने की आवश्यकता होती है। बच्चे आमतौर पर अपनी जीविका तथा परिवार में व्यस्त होते हैं और अपना स्वतंत्र घर भी बसा सकते हैं। आर्थिक सहयोग तथा अकेलापन दूर करने के लिए वृद्ध वयस्क अपने बच्चों पर निर्भर होते हैं (जब बच्चे घर से बाहर चले जाते हैं)। ये कुछ लोगों में निराशा एवं अवसाद को उत्पन्न कर सकता है।

वृद्धावस्था में शक्तिहीनता का अनुभव एवं स्वास्थ्य तथा वित्तीय संपत्तियों का क्षीण होना, असुरक्षा एवं निर्भरता को जन्म देता है। वृद्ध लोग सहारा एवं अपनी देख-रेख के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं। भारतीय संस्कृति वृद्धों को बच्चों पर निर्भर रहने की पक्षधर है, क्योंकि वृद्धावस्था में देख-रेख की आवश्यकता होती है। वस्तुतः पूर्वी संस्कृति के अधिकांश माता-पिता अपने बच्चों का लालन-पालन इस उम्मीद में करते हैं कि वे वृद्धावस्था में उनकी देखभाल करेंगे। यह महत्वपूर्ण है कि वृद्धों में सुरक्षा एवं संबंधन की अनुभूति को प्रदान किया जाए, यह अनुभूति उत्पन्न की जाए की लोग उनका ध्यान रखते हैं (विशेष रूप से संकट के क्षणों में), एवं यह स्मरण रखना चाहिए कि एक दिन हम सभी को वृद्ध होना है।

क्रियाकलाप 4.5

जीवन की तीन विभिन्न अवस्थाओं के लोगों का साक्षात्कार कीजिए; जैसे- 20-35 वर्ष, 35-60 वर्ष एवं 60 वर्ष से अधिक। उनसे निम्न के संबंध में बातचीत कीजिए :

क) उनके जीवन में जो प्रमुख परिवर्तन हुए हैं।

ख) इन परिवर्तनों ने उन्हें किस तरह से प्रभावित किया। इसके संबंध में वे कैसा अनुभव करते हैं?

विभिन्न समूहों के द्वारा बताई गई महत्वपूर्ण घटनाओं की तुलना कीजिए।

यद्यपि मृत्यु होने की संभावना विलंबित प्रौढ़ावस्था में अधिक होती है तथापि मृत्यु विकास की किसी भी अवस्था में हो सकती है। अन्य लोगों की तुलना में बच्चों एवं युवकों की मृत्यु को प्रायः अधिक दुःखद समझा जाता है। बच्चों तथा युवकों में दुर्घटना के कारण मृत्यु होने की संभावना अधिक होती है, परंतु वृद्धों में पुरानी बीमारी के कारण मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है। पति अथवा पत्नी की मृत्यु प्रायः सबसे बड़ी क्षति होती है। अपने साथी की मृत्यु के बाद जो लोग जीवित रहते हैं, वे गहन दुःख का अनुभव करते हैं, अकेलापन, अवसाद, वित्तीय क्षति से समायोजन स्थापित करते हैं एवं उनमें विभिन्न स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का खतरा भी बना रहता है। विधवाओं की संख्या विधुरों से अधिक होती है क्योंकि अध्ययन यह प्रदर्शित करते हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक समय तक जीवित रहती हैं तथा वे अपने से बड़े उम्र के पुरुष से विवाह करती हैं। ऐसे

समय में बच्चों, नाती-पोतों, एवं मित्रों का सहयोग व्यक्ति को दंपति की मृत्यु की क्षति से उबारने में सहायक होता है।

भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के लोग मृत्यु को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखते हैं। हमारे देश की गोंड संस्कृति में यह माना जाता है कि मृत्यु जादू-टोना एवं दैत्यों के द्वारा होती है। मेडागास्कर की टनाला संस्कृति में मृत्यु का कारण प्राकृतिक शक्तियाँ मानी जाती हैं। मानव विकास, जिसे आपने इस अध्याय मे पढ़ा है, व्यक्ति के संपूर्ण जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के प्रभाव को समझने में आपकी सहायता करता है।

प्रमुख पद

किशोरावस्था, जीववाद, आसक्ति, केंद्रीकरण, शिर:पदाभिमुख प्रवृत्ति, मूर्त संक्रियात्मक अवस्था, निगमनात्मक विचार, विकास, अहंकेंद्रवाद, क्रमविकास, लिंग, पहचान, शैशवावस्था, परिपक्वता, मासिक धर्म प्रारंभ, पेशीय विकास, वस्तु स्थायित्व, संक्रियाएँ, दृश्य प्ररूप, प्रसवपूर्व अवधि, पूर्व संक्रियात्मक अवस्था, मूल लैंगिक लक्षण, समीप-दूराभिमुख प्रवृत्ति, यौवनारंभ, प्रतिवर्त, गौण लैंगिक लक्षण, स्व, संवेदी प्रेरक अवस्था, विरूपजनन तत्व

सारांश

- *प्रसवपूर्व अवस्था का विकास माता के कुपोषण, माता के मादक औषधि के उपयोग, तथा माता को होने वाली कुछ बीमारियों से प्रभावित हो सकता है।*
- *पेशीय विकास शिर:पदाभिमुख तथा समीप-दूराभिमुख प्रवृत्तियों का अनुसरण करता है। प्रारंभिक पेशीय विकास परिपक्वता तथा अधिगम दोनों पर निर्भर करता है।*
- *बच्चे के लालन-पालन में सांस्कृतिक भिन्नताएँ, बच्चे तथा उनके देख-रेख करने वालों के बीच की आसक्ति के स्वरूप को प्रभावित कर सकती हैं।*
- *पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत के अनुसार बच्चे में वस्तु-स्थायित्व की पहचान का क्रमश: विकसित होना संवेदी प्रेरक अवस्था की मुख्य विशेषता है। पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था के चिंतन में कुछ कमियाँ; जैसे- केंद्रीकरण, अप्रतिक्रमणीयता, एवं अहंकेंद्रवाद पाई जाती हैं।*
- *मूर्त संक्रियात्मक अवस्था में बच्चे वस्तुओं के मानसिक निरूपण पर संक्रियाओं को निष्पादित करने की योग्यता विकसित कर लेते हैं जो उन्हें संरक्षण के नियम को समझने में सक्षम बनाती है। औपचारिक संक्रिया की अवस्था अधिक अमूर्त, व्यवस्थित होती है एवं तार्किक विचारों को विकसित करती है।*
- *कोल्हबर्ग के अनुसार नैतिक तर्कना में प्रगति तीन चरणों, जो आयु संबद्ध होते हैं, में होती है और संज्ञानात्मक विकास के द्वारा निर्धारित होती है।*
- *यौवनारंभ की अवस्था में संवृद्धि की तीव्रता एक महत्वपूर्ण घटना है जिसमें प्रजनन संबंधी परिपक्वता तथा गौण लैंगिक लक्षण अंतर्निहित हैं। एरिक्सन के अनुसार पहचान निर्माण की ओर अग्रसर होना किशोरों की एक मुख्य चुनौती है।*
- *प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व में स्थायित्व एवं परिवर्तन दोनों ही पाए जाते हैं। प्रौढ़ों के विकास की अनेक प्रमुख घटनाओं में पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन सन्निहित है जिसमें विवाह, मातृपितृत्व तथा बच्चों के घर से बाहर जाने के प्रति समायोजन सम्मिलित हैं।*
- *प्रौढ़ावस्था में आयु संबद्ध शारीरिक परिवर्तनों में रंग-रूप, स्मृति तथा संज्ञानात्मक आयामों में परिवर्तन सम्मिलित हैं।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. विकास किसे कहते हैं? यह संवृद्धि तथा परिपक्वता से किस प्रकार भिन्न है?
2. विकास के जीवनपर्यंत परिप्रेक्ष्य की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. विकासात्मक कार्य क्या हैं? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

4. 'बच्चे के विकास में बच्चे के परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका है।' उदाहरण की सहायता से अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।
5. विकास को सामाजिक-सांस्कृतिक कारक किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
6. विकसित हो रहे बच्चे में होने वाले संज्ञानात्मक परिवर्तनों की विवेचना कीजिए।
7. बचपन में विकसित हुए आसक्तिपूर्ण बंधनों का दूरगामी प्रभाव होता है। दिन-प्रतिदिन के जीवन के उदाहरणों से इनकी व्याख्या कीजिए।
8. किशोरावस्था क्या है? अहंकेंद्रवाद के संप्रत्यय की व्याख्या कीजिए।
9. किशोरावस्था में पहचान निर्माण को प्रभावित करने वाले कौन-से कारक हैं? उदाहरण की सहायता से अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।
10. प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करने पर व्यक्तियों को कौन-कौन सी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है?

परियोजना विचार

1. पिछले दो-तीन वर्षों के अपने अनुभवों का चिंतन कीजिए और निम्नलिखित का उत्तर दीजिए: क्या आपका अपने माता-पिता के साथ वाद-विवाद हुआ है? मुख्य समस्याएँ क्या थीं? आपने अपनी समस्याओं का समाधान किस प्रकार किया और किसकी सहायता ली? अपनी सूची की तुलना अपने सहपाठियों से कीजिए। क्या उनमें कुछ समानताएँ हैं? क्या अब आप अपने सम्मुख उपस्थित समस्याओं के समाधान के बेहतर तरीकों के संबंध में सोच सकते हैं?
2. मित्रों के साथ खेलने के लिए एक पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था के बच्चे (4 से 7 वर्ष की आयु के) के दृष्टिकोण से एक आलेख तैयार कीजिए। ठीक वही आलेख एक किशोर के लिए बनाइए। ये दोनों दृश्यलेख किस प्रकार से भिन्न हैं? आपके मित्रों के द्वारा निभाई गई भूमिकाएँ किस प्रकार से भिन्न हैं?